भारत के देहात

उनका अतीत और भविष्य

लेखक—

श्रीयुत कृष्णकुमार शुक्ल

—:०:—

प्रकाशक—

राष्ट्रीय प्रकाशन मन्दिर, कानपुर

बार } फ़रवरी १९३९ { अजिल्द १) सजिल्द १।)

भूमिका

प्रस्तुत पुस्तक का विषय उसके नाम से ही स्पष्ट हो जाता है। हमारी बहुत दिनों से इच्छा थी कि देहातों की समस्याओं को लेकर एक ऐसी पुस्तक लिखी जाय जो अपने विषय की एक उपयोगी चीज़ हो। इसी आधार पर यह पुस्तक तैयार की गयी है।

इस पुस्तक में विदेशी देहातों की उन्नत बातों को दिखाने की हमारी बड़ी इच्छा थी। जैसा कि हमने यथासम्भव किया भी है। परन्तु साधनों का अभाव था। आसानी से विदेशी देहातों की बातें नहीं मिलतीं। पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों का आश्रय ही अपना आधार हुआ है। अनेक अंग्रेजी पुस्तकों से भी इस प्रकार की बहुत-सी बातें हमको मिली हैं, जिनको हमने अपने पाठकों की जानकारी के लिए इस पुस्तक में विस्तार के साथ दिया है। अपनी वर्तमान अवस्था में हमारे लिए यह आवश्यक हो गया है कि दूसरे देशों की अतीत और वर्तमान परिस्थितियों को हम देखें और उनसे लाभ उठावें।

सभ्य देशों के देहातों की अतीत कथायें हमें वैसी ही दिखाई देती हैं जैसी कि अपने देहातों की अधःपतित बातें हमारे सामने आचुकी हैं। ऐसी दशा में उनका अध्ययन हमारे लिए पथ-प्रदर्शक बनेगा, ऐसा हमारा विश्वास है।

हमारे देहातों की जागृति आरंभ हो चुकी है। देश की राष्ट्रीय सरकार देहातों की उन्नति के लिए पूर्णरूप से प्रयत्नशील है। देहातों की शिक्षा और व्यवसाय की उन्नति के लिए जो कुछ भी साधन सम्भव हो सकते हैं, काम में लाये जारहे हैं और भविष्य में इन साधनों की और भी वृद्धि होगी, ऐसी आशा है।

जिन लोगों का ध्यान हमारे देहातों की ओर है, जो लोग ऐसी पुस्तकों की आवश्यकता को बराबर अनुभव करते चले आरहे हैं, यह पुस्तक उनकी आवश्यकता की पूर्तिस्वरूप सहायक सिद्ध होगी।

कृष्णकुमार शुक्ल

विषय-सूची

विषय | पृष्ठ

भारत के देहात

उनका अतीत और भविष्य

तो उनको आगे का मार्ग स्पष्ट दिखाई नहीं पड़ता। एक अंधकार उनके सामने पड़ता है जो उनके आगे बढ़ने में बाधक होकर खड़ा होता है। इस अवस्था में हमारे संस्थापक इस निर्णय पर पहुँचे हैं कि जब तक इस अंधकार का विनाश न हो सकेगा तब तक आगे बढ़ना कठिन है। वे इस निर्णय पर पहुँचे हैं कि हमारे मार्ग में जो अंधकार आकर पड़ता है, वह हमारे देहातों की छाया मात्र है। इस अंधकार का आगमन उधर से होता है इसलिये देहातों की ओर, उनका ध्यान गया है और उन्होंने निश्चय किया है कि हमें सबसे पहले देहातों के भविष्य-जीवन की रचना का कार्य कर लेना है, उसके पश्चात फिर आगे बढ़ना है।

इसी आधार पर, इसी निर्णय पर हमारे देश के देहातों के निर्माण का कार्य हो रहा है। जिन्हें देखना हो, वे देखें और जिन्हें समझना हो, वे समझें कि भारत के जिन देहातों का जन्म ऋषियों और मुनियों के युगों में हुआ था, वे देहात अपने भविष्य की खोज में कहाँ जारहे हैं!

इस पुस्तक में हम इन्हीं सब बातों का विवेचन करना चाहते हैं। हम जानते हैं कि हमारे देहात जा रहे हैं और अपने भविष्य के साथ-साथ वे कुछ और ही होने जारहे हैं। आज थोड़े से परिवर्तन जो सामने आ चुके हैं, वे लोगों के नेत्रों में चकाचौंध उत्पन्न कर रहे हैं। लोग आश्चर्य में हैं, किंकर्तव्य विमूढ़ भी हैं। वे समझ सकने में एक असमर्थता का अनुभव करते हैं। इस प्रकार के जो व्यक्ति हैं उनकी संख्या कम नहीं है, उनको इस

विवेचना से शीतल प्रकाश मिलेगा। हमारा मुख्य अभिप्राय भारत के ग्रामीण जीवन के भविष्य की विवेचना है, किन्तु इसके साथ देहातों की वर्तमान परिस्थितियों का संबंध अटूट है, साथ ही इस बात की आवश्यकता है कि भविष्य की ओर बढ़ने के पूर्व एक बार अपने अतीत की ओर, प्राचीन काल के जीवन के प्रति, हम देखलें। जिस जीवन को लेकर हमारे देहातों की संस्थापना हुई थी, उस जीवन का नैतिक विधान उसका गौरव और महत्व आज कहाँ है! और भविष्य में जिस गौरव को हम लेने जा रहे हैं, वह क्या है और कैसा है; उसको एक बार हम सब देखें और फिर आगे बढ़ें!

इस परिच्छेद में अपने देहातों के प्राचीन कालीन जीवन का दिग्दर्शन कराना है। हमारा प्राचीन काल इतनी दूर जा चुका है कि भलीभाँति उसको देखने और समझने के लिये हमारे पास कुछ साधन नहीं हैं। उस युग में इतिहास-रचना की प्रणाली का जन्म न हुआ था, जिसके द्वारा आज हमको सहायता मिल सकती। सिवा इसके कि प्राचीन काल के दृश्यों की कुछ छाया पुराने काव्य-ग्रंथों में कहीं मिले और उसी का आधार लेकर प्राचीन जीवन का एक प्रतिबिम्ब तैयार किया जाय।

यह सत्य है कि वास्तविक बातों का पता इतिहास के सिवा और कहीं से कुछ नहीं मिलता। इस दशा में प्राचीन काल के ग्रंथों की सहायता से जो मालूम होता है, उससे पता चलता है कि भारतीय देहातों का प्राचीन जीवन आज से बहुत ऊँचा था

उनके जीवन की समस्यायें इतनी कठोर न थीं जितनी कि आज हैं। खाने-पीने और जीवित रहने की समस्या, साधारण समस्या थी। राजा और प्रजा के संबंध यद्यपि राज-भक्ति और प्रजा-भक्ति के थे, किन्तु उनमें नैतिक बन्धन इतना दृढ़ था कि समूचा समाज सुखी और संतुष्ट था।

रामायण, महाभारत, मनुस्मृति तथा अन्यान्य ग्रंथ प्राचीन जीवन की अनेक प्रकार की परिस्थितियों पर प्रकाश डलते हैं। उनसे यह भी मालूम होता है कि उनका सामाजिक और धार्मिक जीवन अनेक प्रकार के बंधनों में बँधा हुआ था। उस काल में व्यक्तिगत स्वाधीनता का कोई महत्व न था। समाज अपने बंधनों के अंतर्गत था। फिर भी वह वर्तमान जीवन से ऊँचा और विस्तृत था। यहाँ पर हम आवश्यक नहीं समझते कि उस काल के प्राचीन ग्रंथों के श्लोकों का यहाँ उद्धरण दिया जाय अथवा उनका यहाँ पर अर्थ बताया जाय। इसके स्थान पर कुछ थोड़ी सी बातों का स्पष्ट विवेचन कर देना ही काफी होगा।

उस जमाने में अवस्था यह थी कि राजा से लेकर समस्त प्रजा धार्मिक बन्धनों में बँधी हुई थी। मनुष्य के साधारण और असाधारण कर्त्तव्यों का पालन कराने के लिये लोगों के सामने राजा के क़ानूनों का उतना डर न था, जितना कि धार्मिक पतन का था। प्रजा यदि राजा के प्रति अपने कर्त्तव्यों का पालन न करती तो वह प्रजा अधार्मिक समझी जाती। इसी प्रकार यदि राजा अपनी प्रजा के प्रति अपने कर्त्तव्यों का पालन

न करता तो वह अधार्मिक समझा जाता। और धर्महीन राजा नारकीय जीवन का अधिकारी माना जाता।

धर्म की इस अत्यन्त दृढ़ छाया में राजा और प्रजा—दोनों का जीवन व्यतीत होता। प्रजा सुखी और सन्तुष्ट रह सके, कोई भी स्त्री-पुरुष खाने और पीने के लिए दुखी न रहे, इसके लिए राजा और राज-कर्मचारी प्रयत्नशील रहते थे। प्रजा के कार्यों और व्यवसायों में जिस प्रकार उन्नति हो सकती थी, उनके लिए सभी प्रकार के साधनों की व्यवस्था की जाती थी। इस प्रकार के सभी कार्यों का उत्तरदायित्व राजा के ऊपर होता था।

आजकल की अँग्रेज़ी सभ्यता में शहरों और देहातों का जो सम्बन्ध हम देखते हैं, वह प्राचीनकाल में न था। वर्त्तमान शिक्षा-सभ्यता ने शहरों को जो महत्व दिया है, उसके फलस्वरूप देहातों के जीवन का सर्वनाश हुआ है। जीवन की प्रायः सभी प्रकार की सुविधायें आज शहरों में आकर बसी हैं। देहातों का जीवन इसके विरुद्ध होगया है। वहाँ निराशा, अशिक्षा, अविवेकता, निरुद्योगिता और अकर्मण्यता का अंधकार फैला हुआ है। इसका कारण वर्त्तमान शिक्षा, सभ्यता और राज-व्यवस्था है।

प्राचीन काल में इसका उलटा था। शहरों की अपेक्षा ग्रामीण जीवन सुन्दर, सरल, सुखमय और अत्यन्त शान्त माना जाता था। उस समय की राज-व्यवस्था ऐसी थी, जिससे देहात के जीवन को सभी प्रकार की सुविधायें प्राप्त थीं। अत्यन्त विद्वान, धार्मिक तथा महापुरुष देहातों का जीवन व्यतीत करते थे। पढ़े-

लिखने, ऊँचे दर्जे की सोसाइटी के संसर्ग में रहने की सुविधायें भी देहातों में ही अधिक थीं। जनता की शुभचिंतना को सामने रखकर तपस्वी ऋषि और मुनि, साधु और सन्यासी सदा शिक्षा और उपदेश का प्रचार करते थे। अनाचारी और अत्याचारी अधार्मिक समझे जाते थे और समस्त समाज न केवल उनको घृणा के साथ देखता था, वरन् सभी प्रकार उनका बहिष्कार करता था। दुराचारी और व्यभिचारी. समाज के कोप-भाजन बनकर कहीं शरण न पाते थे। नैतिक और धार्मिक पतित स्त्री-पुरुषों की संख्या केवल इसीलिए लुप्तप्रायः होती थी कि सम्पूर्ण समाज में उनका बहिष्कार होता था। इस प्रकार की सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक व्यवस्था के कारण देहात का जीवन अत्यन्त पवित्र होता था।

प्राचीन काल में हमारे देहात आर्थिक अवस्था में जितने ऊँचे थे, उसकी आज कल्पना भी नहीं की जा सकती। उसके कई कारण थे। आज हमारे देहातों में काश्तकारी को छोड़कर और दूसरा कोई व्यवसाय नहीं है। उस समय खेती के कार्य के सिवा और बहुत से उद्योग होते थे। जिनके कारण देहात के निवासियों का परिश्रम विभिन्न कार्यों और व्यवसायों में बटा रहता था। भूमि का उतना बड़ा महत्व न था, जितना बड़ा आज है। कारण इसका यह था कि खेती करने वालों की संख्या इतनी अधिक न थी, जितनी कि आज हमारे देहातों में है। यह स्वाभाविक है कि किसी चीज के ग्राहकों की संख्या जितनी ही अधिक होगी, उसकी

क़ीमत उतनी ही बढ़ती जायगी और उसके ग्राहकों की संख्या जितनी ही कम होगी, उसकी क़ीमत उतनी ही घटती जायगी। उस समय देहात के लोग, अन्यान्य प्रकार के उद्योग करते थे। और सुखी रहते थे।

प्राचीन काल में देहात-निवासियों के सुखी जीवन के कुछ विशेष कारण थे जो इस प्रकार हैं—

१—कृषि के द्वारा पैदावार अधिक थी। अदायगी कम थी।

२—लोग सादा जीवन बिताते थे। अपव्यय कम था।

३—काम-काज, शादी-ब्याह आदि जैसे काम-काजों में आज की तरह रुपया पानी की तरह न बहाया जाता था।

४—अदालतबाजी का रोग न था।

५—प्रजा को सुखी और सन्तुष्ट बनाने में राजा का महत्व माना जाता था।

६—दुर्भिक्ष बहुत कम पड़ते थे।

७—देहातों की पैदावार दूसरे देशों को न जाती थी।

ऊपर लिखी हुई सभी बातें हमारे देहातों की बर्बादी के मुख्य कारण हैं। प्राचीन काल में कृषक, राजा को भूमि के बदले में जो देते थे, वह उनकी पैदावार पर निर्भर था। पैदावार कम होने पर किसानों को कम देना पड़ता था और किसी भी प्रकार का दुर्भिक्ष पड़ने पर किसानों को कुछ भी न देना पड़ता था। इससे उनकी बड़ी रक्षा होती थी।

हमारे देहातों का प्राचीन जीवन इस प्रकार की सुविधाओं से भरा हुआ था। ये सुविधाएँ धीरे-धीरे लुप्त होने लगीं। मुस्लिम शासन के आने पर प्राचीन जीवन बहुत अंशों में भंग-भंग हुआ। और उसके बाद अंग्रेजी काल में देहातों का जो सर्वनाश हुआ है, उसका करुणापूर्ण दृश्य पाठक आगामी परिच्छेदों में देखेंगे।

मुस्लिम काल में देहातों की अवस्था

मुस्लिम युग के देहातों का सच्चा खाका खींचने के लिये हमारे पास कोई उपयुक्त साधन नहीं है। जो साधन हैं भी वे सम्भवतः नहीं के बराबर हैं। क्योंकि आजकल स्कूलों, कालेजों और युनिवर्सिटियों में जो इतिहास पढ़ाये जाते हैं वे अधिकतर ब्रिटिश काल के रचे हुये हैं जिनका दृष्टिकोण केवल इस तरफ़ है कि हिन्दू और मुस्लिम जनता कभी इत्तफ़ाक न कर सके। भ्रमात्मक बातों का सहारा लेकर हम अपने पाठकों को भ्रम में नहीं डालना चाहते। और न हमारी मंशा है कि इस प्रकार की मिथ्या बातें लिखकर हम पुस्तक के पृष्ठों की संख्या बढ़ायें।

मुसलमानों के हमलों से पूर्व, हमारे देहात पूर्ण-रूपेण स्वव्यवस्थित थे। उनकी जमीनें अपनी जमीनें होती थीं। उनका व्यवसाय और वाणिज्य भी उन्हीं के हाथ में था। किन्तु मुसलमानों के हमलों ने प्राचीन देहातों में एक प्रकार की क्रान्ति-सी मचादी।

इन आक्रमणकारियों के मार्ग में जो गाँव या हिन्दोस्तान का जो भी हिस्सा पड़ा, उसे वे जलाकर और लूटकर नेस्त नाबूत करते गये। किन्तु इसमें उन आक्रमणकारियों के जुल्म सम्भवतः स्वाभाविक थे। कोई भी राजा या कोई भी देश जब दूसरे देश या दूसरे राजा पर विजय पाना चाहता है तो दुश्मन को काबू में लाने के लिये उसे सब-कुछ करना पड़ता है। यही हाल इन आक्रमणकारियों का हुआ। हिन्दू लोग अपनी स्वाधीनता मुसलमानों के हाथ न सौंपना चाहते थे। और मुसलमानों में विजय का भीषण घोष मुखरित होरहा था। इन परिस्थितियों ने ही महासंग्राम और विनाश का रूप धारण कर लिया।

इस प्रकार जब तक भारत में मुसलमानों के आक्रमण होते रहे तब तक यहाँ के देहातों की दशा ज्यादा ऊँची न उठ सकी। किन्तु हम इतना अवश्य कह सकते हैं कि वह बरबादी का ज़माना होते हुये भी आज की बदतरी से कहीं बेहतर था।

ज़्यादातर मुसलमान आक्रमणकारियों का उद्देश्य केवल हिन्दोस्तान को लूटना ही रहा है। वे इस प्रकार जब तक लूटमार करते रहे, तब तक तो यहाँ शान्ति न रह सकी। किन्तु उनके चले जाने के बाद फिर अमन व अमान क़ायम होजाता था। इस प्रकार की क्रान्ति वर्षों चलती रही। किन्तु ज्योंही शासन का भार अकबर के हाथ में आया, त्योंहीं सब अव्यवस्थायें दूर हो गईं और एक बार फिर देहातों का पुनर्निर्माण सा हुआ।

जिस समय अकबर ने हिन्दोस्तान की बागडोर अपने हाथ

में ली, उस समय देहातों में चारो ओर अशान्ति और त्राहि-त्राहि मची हुई थी। जागीरदारी प्रथा बहुत पहले से चली आती थी। और अब तक ज़मीन की पैमाइश का ठीक प्रबन्ध न हो सकने के कारण बड़ी उथल-पुथल मची हुई थी। जो जितनी ज़मीन कब्जे में कर सका, उसी पर अपना अधिकार जमा बैठा। जागीरदार अक्सर राजा की सहायता या उसकी खुशामदों में लगे रहते थे। उनके पास इतना समय ही न था कि वे ग्रामों की उन्नति के विषय में कुछ सोचें। इसके अलावा उनके पास जो समय बचता था, उसे वे ऐशो-आराम में सर्फ़ कर देते थे। ग़र्ज़ गाँवों की दशा चिन्ताजनक थी।

अकबर ने तख्त पर बैठते ही जागीरदारी प्रथा का अन्त-सा कर दिया और अपनी छोटी-सी अवस्था ही में उसने देहातों की उन्नति के विषय में तरह-तरह के साधन उपयुक्त किये। उसका विचार हुआ कि एक बार तमाम ज़मीन नाप डाली जाय और उसकी उपज देखकर उसी हिसाब से उसका लगान भी निश्चित कर दिया जाय।

उस ज़माने में अकबर के दरबार में राजा टोडरमल इस विषय के पंडित थे और इसलिये यह काम उन्हीं के सुपुर्द किया गया। राजा टोडरमल ने अनवरत परिश्रम करके तमाम भूमि नापी और उपज का ध्यान रखते हुये उसे चार क़िस्मों में बाँट दिया। इससे किसानों को यह लाभ हुआ कि उनका लगान का बोझ हलका होगया। और वे केवल एक निश्चत मामूली रक़म

लगान के रूप में अदा करने लगे। एवं वे अपनी भूमि के मालिक से बन गये।

इस प्रकार किसानों को वर्ष में केवल दो बार लगान अदा करना पड़ता था और उसे वसूल करने के लिये सरकारी कर्मचारी नियुक्त थे जो स्वयं देहातों में जा-जाकर लगान वसूल करते थे। साथ ही यदि किसी ग्रामीण को किसी प्रकार की कोई शिकायत होती थी तो उस पर पूर्ण रूपेण विचार किया जाता था, और हर प्रकार उसे सुविधा पहुँचाने की व्यवस्था की जाती थी।

देश में दुर्भिक्ष या बाढ़ आजाने पर आज की तरह दान के लिये समाचार पत्रों में अपीलें न निकालनी पड़ती थीं और न पार्टी बनाकर दर-दर चंदा ही माँगना पड़ता। उस समय के राजा तो ऐसे समय में प्रजा की सहायता करना अपना धर्म समझते थे और इस प्रकार की सहायता के लिये राज-कोष खोल दिये जाते थे। जगह-जगह खानकाहें क़ायम कर दी जाती थीं जिनमें दीन, दुखी, अपाहिज और निराश्रित ग्रामीणों को भोजन दिया जाता था।

आज आये दिन भारत पर विपत्तियों के पहाड़ फट रहे हैं। भूकम्प, बाढ़ महामारी और रेलवे दुर्घटना आदि-आदि न जाने कितनी दुर्घटनाओं के दर्दनाक अफ़साने समाचार पत्रों में हम अपनी आँखों देखते हैं। किन्तु उनका राज्य की ओर से क्या प्रबन्ध किया जाता है, यह राज्य जाने। हम तो केवल इतना जानते हैं कि पीड़ितों की सहायता के लिये दान की अपीलें होती

हैं और उदार व्यक्ति उसमें दान देकर उन निराश्रित आत्माओं को प्राणदान देते हैं। इन तमाम बातों के देखने से यह कहा जा सकता है कि यदि हम खुद ही अपने पीड़ित समाज की सहायता न करें तो शायद ऐसी अवस्थाओं पर वे एक-एक दाने और एक-एक धज्जी के लिये तरस कर मर जायें।

हमारी गाढ़ी कमाई का एक बड़ा अंश राज-कोष में चला जाता है। किन्तु जब हमारे ग्रामीण इस प्रकार की आकस्मिक घटनाओं में फँस जाते हैं तो राज-कोष से पैसा न खर्च करके क्यों हमारा गला फँसाया जाता है?

शहरों की बात जाने दीजिए किन्तु एक बार ज़रा नज़र उठाकर गाँव की ओर देखिये। मिट्टी के टूटे-फूटे खण्डहरों की-वीरान आबादियाँ ही आज गाँवों के रूप में बाक़ी बची हैं। उनके रहने वाले देवता स्वरूप व्यक्तियों की सूरतों पर आज मुर्दनी छायी हुई है। वे अपढ़ हैं। गँवार हैं किन्तु इसका दोष उन्हें नहीं दिया जा सकता। वे तो अपना खून-पसीना एक करके शैतान की सी मेहनत करके, अन्न पैदा करते हैं, किन्तु बेचारे सुख के साथ उसका उपयोग नहीं कर सकते। उनका निवाला मुँह के अंदर पहुँचने के पेश्तर ही बेरहमी से छीन लिया जाता है।

किन्तु ये सब तो आज की बातें हैं। इनका ज़िक्र तो हम अगले किसी परिच्छेद में करेंगे। अभी तो हमें प्राचीन-मुस्लिम-युग के देहातों की विवेचना करना है।

उस ज़माने में देहातों का निर्माण भी नये रूप से हुआ था।

एक जगह से दूसरी जगह तक जाने के लिये अच्छी सड़कों की व्यवस्था थी और उनके किनारे किनारे ग्रामीणों की सुविधा के लिए पेड़ लगा दिये जाते थे जिससे वे पैदल रास्ता चलने में कसी प्रकार का कष्ट न हो। साथ ही थोड़ी-थोड़ी दूर पर कुएँ बने हुए थे और कुछ फ़ासिले पर सरायों का भी प्रबन्ध किया गया था जिनके ध्वंसावशेष आज भी अपने अतीत गौरव का स्मारक लिये कहीं-कहीं मिल जाते हैं।

इन सब बातों से यह कहा जा सकता है कि वह युग जुल्मों का युग होते हुये भी किसी क़दर अच्छा था। आजकल अधिकांश ग्रामीण सरमाये दारों के क़र्ज़ के बोझ से दबे जा रहे हैं। फ़स्लों का हाल यह हो रहा है कि लगान तक देना मुश्किल पड़ रहा है। नतीजा यह होता है कि किसान अपनी जिंदगी ही बेच बैठता है। उसके पास तन ढाँकने और पेट भरने के सिवा इतनी बचत ही नहीं है कि वह कर्ज़ अदा कर सके। इसके फलस्वरूप उसे अपने व्यवहर की बेगार करनी पड़ती है और उसमें यदि उस बेचारे ने कारणवश मजबूरी दिखाई तो उसे सरमायेदारों की ठोंकरें तक सहनी पड़ती हैं।

किन्तु वह युग इसके बिल्कुल विपरीत था। सूद लेना पाप-सा समझा जाता था और यदि लिया जाता तो बहुत थोड़ा जिसे अदा करने में ग्रामीणों को कोई कष्ट न होता था और क़र्ज़ लेने की बहुधा जरूरत भी नहीं पड़ती थी। क्योंकि दुर्भिक्ष या और इसी प्रकार की विपत्तियों के समय राज्य की ओर से तक़ावी का

प्रबन्ध किया जाता था। जो व्यक्ति जितनी ज़रूरत महसूस करता उतना रुपया राज्य कोष से उधार के रूप में ले लेता था और धीरे-धीरे अपनी सुविधानुसार उसे अदा कर देता था। और कहीं-कहीं तो ऐसे उदाहरण भी मिलते हैं कि यदि रुपया तक़ावी पर देने के बाद भी दुर्भिक्ष का प्रकोप रहता तो सरकार रुपया माफ़ भी कर देती थी। इसके अलावा ग्रामीणों की सुविधा और उनके पालन के लिए ऐसे समय पड़ जाने पर राज्य की ओर से किसी बड़ी इमारत या क़िले की नींव डाल दी जाती थी जिनमें लाखों ग़रीब मज़दूर और किसान आ-आकर काम करते थे और अपनी तथा अपने मासूम बच्चों की परवरिश करते थे।

आज हम ज़माने को बिल्कुल पल्टा हुआ पाते हैं। लाखों ग्रामीणों की रोजी आज की एक मशीन हड़प जाती है। किंतु यह बला मुस्लिम युग तक यहाँ न फैल पाई थी। जिसके फलस्वरूप हमारे देहात शिल्प कला के केन्द्र बने हुये थे। और जगह-जगह पर दस्तकारी के अच्छे-अच्छे कारखाने थे। आज जितना महीन कपड़ा मशीन तैय्यार करती है, उससे कहीं बढ़कर उस ज़माने में भारत के जुलाहे तैय्यार करते थे। हम आज सुन्दर रेशमी कपड़ों के लिये अधिकतर बाहर के मोहताज हैं, किन्तु उस समय हमारे देहातों का बना कपड़ा व दूसरे देशों में बड़े भाव के साथ ख़रीदा जाता था। देहातियों का एक बड़ा फिरक़ा खेती की ओर झुका हुआ था और बाक़ी आदमी शिल्प में लगे हुये थे। गर्ज़ जो जिस हालत में थे, खुश हाल थे। आज की तरह गली-

गली और कूचे-कूचे में रोटी की इतनी विकट-समस्या न थी।

पशुपालन के लिये भी काफ़ी प्रोत्साहन दिया जाता था और इसके लिये चरागाहों की भी व्यवस्था थी क्योंकि जो भूमि चरागाहों की काबिल उपयुक्त समझी गई थी, उसे बर्बाद करके खेतों के रूप में नहीं परिणत किया गया था। प्रत्येक ग्रामीण के पास कुछ-न-कुछ पशु अवश्य होते थे। जिनसे उसे बड़ा फ़ायदा होता था। पहली बात तो यह कि उसे बैल ख़रीदने के लिये क़र्जे के बोझ के नीचे नहीं दबना पड़ता था। और दूसरे यह कि वह घी-दूध आसानी से खा सकता था जिससे शरीर सुगठित और बलिष्ठ हो जाता था। मौक़ा पड़ने पर या आवश्यकता पड़ने पर उन जानवरों में से एक आध को बेचकर आकस्मिक ज़रूरियात रफ़ा कर ली जाती थीं।

आज देहातों में कितने पशु हैं? केवल कुछ इने-गिने। और जो हैं भी, वे अच्छी हालत में नहीं है। इसका मुख्य कारण तो है, चरागाहों का अभाव और दूसरा ज़मींदारों की ज्यादतियाँ। वे अपनी थोड़ी रक़म के लिये ग़रीबों की इस एक मात्र संपत्ति को हड़प जाते हैं। अब मौजूदा सरकार का ध्यान चरागाहों और अच्छी नस्लों के पशुओं की ओर गया है और यदि इसी लगन और उत्साह से काम होता रहा तो शायद फिर से इस ओर उन्नति हो सके।

उस युग का हमारा देहाती जीवन, एक नवीन प्रणाली का जीवन था। गाँवों में आये दिन पुलिस की नादिरशाही का

बोल वाला न था। मुखिया ही गाँवों के मसलों पर न्याय पूर्ण विचार करता था और उसका न्याय लोगों को मानना होता था। भारी मुक़द्में दरबार में भी पेश होते थे जिनपर गवेषणा-पूर्ण विचार व बहस के बाद फ़ैसला दिया जाता था। दण्ड भी दिये जाते थे। किन्तु वे दण्ड इतने कठोर होते थे कि जनता को जुर्म करने का साहस ही नहीं होता था और इस प्रकार आज की तरह हमारे देहातों का पैसा अदालतों में न बर्बाद होता था।

आज देहातों की फ़सल का सर्वेसर्वा गाँव का पटवारी होता है। गाँवों में ओले या पाले से फ़सल बरबाद हो जाती है। अना-वृष्टि या अतिवृष्टि से त्राहि-त्राहि मच जाती है, टिड्डी दल फ़सलों को नेस्तनाबूद करता हुआ निकल जाता है। किन्तु पटवारियों के कान में जूँ तक नहीं रेंगती। यदि ज्यादा-से-ज्यादा इन ओहदे-दारों ने कुछ उदारता दिखाई तो सदर में जाकर रिपोर्ट करदी कि फ़सल में रुपये में, दो आने का नुकसान हुआ है। सरकार के पास इतना अवकाश नहीं कि पूर्ण रूपेण उसकी जाँच कराई जाय। लिहाज़ा बराय नाम की छूट देकर मामला टाल दिया जाता है और फिर लगान-वसूली के मौक़ों पर बेचारे ग्रामीणों को ज़मीदारों की नाजायज़ धमकियाँ सहनी पड़ती हैं।

किन्तु वह युग, दूसरा युग था। ऐसे मौक़ों पर राजा स्वयं भेष बदल कर रियाया की दीन दशा का निरीक्षण करता था और राज्य की ओर से उसका उचित प्रबन्ध करता था। राजा

इस बात को अच्छी तरह समझता था कि ग्रामीण ही राज्य के मुख्य स्तम्भ हैं और इसीलिये जहाँ तक हो सकता था, वह उन्हें सन्तुष्ट करने की कोशिश करता था। उसका ध्येय ग्रामीणों को लूटकर कोष भरना न था। वह तो उस कोष को जनता का कोष समझता था और उसे उन्हीं की भलाई में लगाने के लिये तत्पर रहता था।

सम्भव है, हमारी इस प्रकार की बातों पर टिप्पणियाँ भी हों। क्योंकि मौजूदा इतिहास, जैसा हम ऊपर कह चुके हैं, हमारे इस कथन की पुष्टि न कर सकेंगे। किन्तु हमें तो निष्पक्ष-भाव से अपने भोले ग्रामीणों के सामने सत्यता पर विचार करना है। हम यह मानते हैं कि वह युग एक ज़ुल्म का युग था। किंतु ज़ुल्म का सम्बन्ध केवल धार्मिक मामलों तक ही सीमित था। उससे देहातों की आजादी और उनके प्रबन्ध में कोई त्रुटि न आती थी। और यदि कुछ त्रुटियाँ कहीं-कहीं हुई तो वे स्वाभाविक थीं।

वह युग ग्रामीणों की स्वाधीनता का युग था। किसान अपनी ज़मीन पर जो चाहते, पैदा करते थे। उन पर इसके लिये कोई प्रतिबन्ध न था। और यही कारण था कि उस समय भारत की नील और अफ़ीम का दूसरे देशों में बोलबाला था। गाँवों के किनारे छोटे-छोटे पक्के हौज़ बने हुये थे, जिनमें किसानों के छोटे-छोटे बच्चे तक नील से रंग तैयार करते थे। वह रंग इतना टिकाऊ और सुन्दर होता था कि विदेशी भी उसकी मुक्त कंठ से प्रशंसा

करते थे। अफ़ीम पैदा करने के लिये भी कोई रुकावट न थी और लाखों रुपये की अफ़ीम प्रति वर्ष चीन तथा अन्य दूसरे देशों को भेजी जाती थी। वह जमाना खुशहाली का था।

आज भी हम बाजारों में नीले कपड़े देखते हैं—आज भी देहातों में किसानों की औरतों की ओढ़नी नीली दिखाई पड़ती हैं। किन्तु यह सब कृत्रिमता है। हमारा व्यवसाय हम से छिन गया। हमारे गाँवों से नील की खेती नेस्तनाबूद हो गई। और अब उसका स्थान जापानी-जर्मनी तथा अन्य दूषित रंगों ने ले लिया। जो सुन्दर व टिकाऊ न होते हुये नुक़सान देह भी हैं। जिनसे रँगे कपड़े पहनने से, हमारे शरीरों में खुजली-सी मच जाती है और साथ ही एक विचित्र प्रकार की दुर्गन्ध भी उन रंगों से फूट पड़ती है।

यह सब हुआ क्यों, इसका कारण बिल्कुल स्पष्ट है। हम इस पर प्रकाश डालकर पुस्तक को बढ़ाना नहीं चाहते। किन्तु हम इतना अवश्य कहेंगे कि यह सब हमारी कमजोरी और उदारता का फल है।

हमने जो कुछ किया और जो कुछ कर रहे हैं। उसका फल हम तो भोग ही रहे हैं, किन्तु संभव है यदि हमारे देहात चेतें नहीं तो शायद हमारी होनहार भावी सन्तानों को भी इसी तरह खून के आँसू रोना पड़े।

कोई भी राष्ट्र या कोई भी मनुष्य यदि तरक्की करना चाहता है तो उसे अपने पैरों की ताक़त की जरूरत महसूस होती है।

दूसरों का सहारा लेकर न किसी ने कुछ किया है और न कोई कुछ कर सकता है।

हमारे देहात, हमारे अपने देहात हैं। उनकी तरक्की या उनका सवाल हम पर मुनहसिर है। आज जिस तरह हिन्दोस्तानी अपने गाँवों की उन्नति के लिये प्रयत्नशील हैं, यदि इसी जोश के साथ आगे भी काम करते रहे तो सम्भव है, एक बार हम फिर अपने देहातों और किसानों को उसी रूप में देख सकें; जिस रूप का जिक्र हम अब तक करते आये हैं।

वर्तमान करेन्सियों के सिक्के हमारे सामने हैं। उनका भाव भी हमारे सामने है। और हम यह भी जानते हैं, कि किस प्रकार थोड़ी-सी चाँदी या थोड़ा-सा सोना मिलावट के योग से सिक्के में तबदील किया जाता है; किन्तु हम चूँ नहीं कर सकते। जो मूल्य निर्धारित है, यदि हम उसे देने से इन्कार करें तो हम मुजरिम क़रार दिये जायेंगे।

मुस्लिम युग के सिक्कों का इतिहास भी हमारे सामने है। उनका भी भाव हमारे सामने है। और हम देख रहे हैं कि उस जमाने के सिक्के असली धातु के बने हुये होते थे। उनमें किसी प्रकार की मिलावट नहीं होती थी। बाजार के भाव भी इतने सस्ते थे कि जो चीज आज रुपये खर्च करके भी मुश्किल से पाते हैं, वही चीज उस जमाने में पैसों में मिलती थी।

हमारा कहना यह नहीं है कि मुस्लिम युग किसानों के लिये राम राज्य था, या हम यह भी नहीं कहते कि उस युग में किसान पूर्ण-

तथा खुशहाल थे। हम तो केवल यह बताना चाहते हैं कि उस युग में या उसके पहले हम क्या थे और अब क्या होते जा रहे हैं। हमारे पूर्वजों ने देहातों में किस प्रकार जीवन बिताया। हमारे वर्तमान ग्रामीण किस प्रकार मदिरा के चक्कर में पड़कर अपने अतीत के लिये रो रहे हैं और हमारी भावी सन्तानों के सामने हमारे देहात किस रूप में आवेंगे।

हमारे देहात आज भी देहात ही कहकर पुकारे जाते हैं—हमारे ग्रामीण आज भी ग्रामीण ही कहकर पुकारे जाते हैं। उनकी ज़मीनें, उनके हल और बैल सब उसी प्रकार हैं जैसे पहले थे। किन्तु फिर भी आज वे खेत इतना अन्न क्यों नहीं देते जिससे हमारे ग्रामीण रोटी के लिये दूसरों के सामने हाथ न फैलायें। हमारे देहातों में क्यों इतनी रुई नहीं पैदा होती कि हमारी ग्रामीण माँ-बहनें अपनी आबरू आसानी से ढक सकें।

इसका मुख्य कारण है, किसानों की बदकिस्मती जो ज़बरदस्ती उनके जीवन के साथ मढ़ दी गई है।

अंग्रेज़ी शासन में हमारे देहात

अंग्रेज़ी युग के देहातों का चित्र हमारी आँखों के सामने है। हम दिन-रात देहातों में होने वाली बर्बर-पशुता का नंगा नाच देख रहे हैं और साथ ही देख रहे हैं उन भूखे-नंगे निराश्रित कृषकों की अश्रु-पूर्ण आँखें जो आज बे आबरू होकर कानून के शोलों में अपना सर्वस्व स्वाहा कर चुके हैं। हम अपने देहातों में आज किसानों के रूप में नर कंकालों के उस समूह को देख रहे हैं जो आज भी दुनिया को क़ायम रखने के लिये अपना खून-पसीना एक करके अनाज पैदा कर रहा है। इस अनवरत परिश्रम का उसे क्या फल मिलता है? यह उसके बेकस दिल से पूछने की बात है। हम तो आज किसान कही जाने वाली मूर्ति की केवल इतनी परिभाषा जानते हैं कि वह अपनी ही पैदा की हुई जिन्स से मुट्ठी-भर दाने पा जाने की आशा में वर्ष-भर अपने कलेजे के टुकड़ों को मिट्टी के मिलाया करता है और चाँदी के थोड़े-से टुकड़ों के बदले वह आधे पेट

रहकर अपना सब-कुछ सरमायेदारों के सिपुर्द कर देता है।

हमारे आज के किसान के शरीर में भी एक छोटा-सा दिल है—परमात्मा की दी हुई उसके भी दो आँखें हैं। हमारी सब की तरह उसके भी जबान के रूप में मांस का एक लोथड़ा है। वह भी दुनियाँ के ऐशो-आराम की परिभाषा जानना चाहता है। उसकी भी आँखें अपनी बहू-बेटियों के शरीर पर सुन्दर जड़ाऊ ज़ेवर देखना चाहती हैं। उसकी जबान भी सुन्दर सुस्वादु-व्यञ्जनों का जायक़ा लेना चाहती है—साथही कभी-कभी अपने ऊपर किये गये अत्याचारों का प्रतिकार भी करना चाहती है। किन्तु उसे ऐसा क्यों नहीं करने दिया जाता? आखिर वह भी दुनिया में हसरतों और तमन्नाओं का पुतला बनकर आया है। किन्तु हम अपना यह रोना किसके आगे रोवें और कहाँ तक रोवें। अगर यही बातें लिखते रहें तो अपने मार्ग से बहुत दूर निकल जायेंगे। इसलिये अब हम अपने मुख्य विषय पर आते हैं।

युग परिवर्तन-शील है। धीरे-धीरे जमाने ने पल्टा खाया और मुसलमानों के राज्य-मंच पर पटाक्षेप हुआ। अँग्रेजों को मौक़ा मिला और उन्होंने हिन्दोस्तान पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया। इन्होंने यहाँ किस प्रकार अपना आधिपत्य क़ायम किया? उसे क़ायम करने में इन्हें क्या-क्या करना पड़ा? ये तो इतिहास की बातें हैं। हमें यहाँ केवल यह बताना है कि इस युग में हमारे देहातों में क्या-क्या तबदीलियाँ हुईं और उन तबदीलियों से हमारे गाँवों पर क्या प्रभाव पड़ा।

जिस समय हिन्दोस्तान अँग्रेजों के हाथ में आया, उस समय पहले इनका ध्यान देहातों की ओर गया। क्योंकि ये अच्छी तरह समझ गये थे कि हिन्दोस्तान की बुनियाद देहात हैं और शहर तो केवल आडम्बर-मात्र हैं। इसीलिये इन्होंने पहले देहातों का ढाँचा बदलना चाहा।

हम पहले बता चुके हैं कि जमीन, अकबर के जमाने में नप चुकी थी। इसलिए इन्हें इस विषय में कोई विशेष परिश्रम नहीं करना पड़ा। इन्होंने एक प्रकार से सारी भूमि छिन्न-भिन्न-सी करदी और उसे छोटे-छोटे टुकड़ों में बाँट दिया। जिसे आज हम जमींदारी के नाम से पुकारते हैं।

जमींदारी प्रथा की नींव दृढ़ करने से सरकार का तो लाभ हुआ किन्तु साथ ही ग़रीब किसानों का सर्वनाश भी आरंभ हुआ। सरकार तो एक निश्चित तारीख़ तक अपनी माल गुज़ारी, ज़मींदार से पाने की हकदार हो गई, किन्तु किसानों की स्वाधीनता और अस्तित्व जमींदारों के हाथों में पड़कर मिट-सा गया।

किसानों से किस सख़्ती और किस बेरहमी के साथ रुपया वसूल किया जाता है, यह केवल वही जान सकते हैं जिन्होंने अपना जीवन देहातों में बिताया है या जो व्यक्ति देहातों के संपर्क में अधिक रहे हैं। शहर में रहने वालों के पास न इनका कोई उदाहरण ही है और न उन्हें इस प्रकार की सच्ची घटनाओं का पूरा-पूरा पता ही लगता है। अख़बारों में जो कुछ छपा, उसी पर समवेदना प्रकट कर लेना उनका काम है।

हम यह मानते हैं कि वर्तमान समय में देहातों की ओर जन-समुदाय का ध्यान आकर्षित हो रहा है। उनकी सहायता करने वाले इस समय अधिकतर शिक्षित व्यक्ति हैं। किन्तु हमें तो इस काल का सविस्तार जिक्र करना है, और इसी लिये हमें सब बातें घटनात्मक क्रम से साफ़-साफ़ लिखनी पड़ रही हैं।

दुनियाँ का सभ्य समाज इस बात को अच्छी तरह से मानता है कि हिन्दोस्तान अवनति के गर्त में बुरी तरह धँसता जा रहा है। इस महापतन में सबसे पहले अपना सर्वस्व स्वाहा करने वाले भारत के किसान हैं। उनका सब-कुछ मिट चुका और अब रही-सही उनकी मान-मर्यादा भी लुटी जा रही है। एक फूस का झोपड़ा, लकड़ी और लोहे के कुछ औज़ार—बस यही है आज के किसान की चिर-संचित पूँजी। किन्तु साम्राज्य वाद की भीषण चिनगारी इन झोपड़ों को भी भस्म-सात् कर देने के लिये प्रचण्ड रूप धारण कर रही है। कहा नहीं जा सकता कि इस प्रकार पिसते हुये किसानों की ये अन्तिम स्वासें कब और क्या इन्क़लाब कर गुज़रें ?

वह खुशहाल किसान, जिन्हें एक दिन राजा तक अपना दाहिना अंग मानते थे, आज ज़लील होकर अपनी बदक़िस्मती पर रो रहे हैं और अपने पेट की ज्वाला शान्त करने के लिये दर-दर ठोकरें खा रहे हैं। अब उनका इस दुनियाँ में रहा ही क्या ? ऊपर ज़हरीला नीला आसमान, नीचे संगदिल भूरी ज़मीन और चारों तरफ़ काँटेदार यह शोषक साम्राज्य वाद।

आज किसान अन्न पैदा करने के लिये परिश्रम करता है। दुर्भाग्य से यदि फ़सल बेकार हो जाती है और वह बेचारा लगान नहीं अदा कर पाता तो उसकी रोज़ी, उसकी एक मात्र ज़मीन थोड़े से रुपयों के लिये छिन जाती है। ज़मीदार के सामने वह अपने मासूम बच्चों को लेकर रोता है, गिड़गिड़ाता है, प्राणों की भीख माँगता है। किन्तु बदले में वह धक्के देकर बाहर निकाल दिया जाता है। नतीजा यह होता है कि उसके साथ-साथ उसका निरपराध परिवार भी भूखा और नंगा रहकर थोड़े ही दिनों में अपनी जीवन-लीला समाप्त कर देता है।

आज देहातों में यदि किसानों के मकानों की तलाशी ली जाय तो उनके पास कुछ टूटे-फूटे बर्तनों और पेट भरने को, दो-एक दिन के लिये अन्न के सिवा और कुछ न मिलेगा। वे बेचारे करें क्या, उनकी सारी उपज तो ज़मीदारों के यहाँ चली जाती है। जो कुछ बचा, वह अन्य क़र्ज़ों में निपट जाता है। फल यह होता है कि धनहीन किसान रात के नीरव अंधकार में अपनी घनी अंधेरी झोपड़ी में बैठकर अपने जीवन की सफल घड़ियों के निष्फल हास पर रोया करता है।

सब से ज़्यादा बीमारियाँ, आज ग़रीबों की बस्तियों में अपना अड्डा जमाये हुये हैं। साधन हीन ग़रीब, परमात्मा के सहारे मरीज़ को छोड़, अपनी रोटी की फ़िकर में लगे रहते हैं। वे यदि ऐसा न करें तो उस बीमार के साथ-ही-साथ खुद भी भूखों मर जायें। बीमारी से जकड़ा हुआ ग़रीब किसान उचित

चिकित्सा, उचित पथ्य और उचित परिचर्या न पा सकने के कारण घुट-घुट कर मर जाता है। उसकी मौत भी चुपचाप आती है। हम जान भी नहीं पाते कि हमारे पालकों में से कब एक विभूत लुप्त हुई। दो चार नंगे-भूखे गरीब किसान, नंगी लाश या मैले-कुचैले फटे चीथड़ों से ढकी लाश स्मशान में ले जाकर फूँक देते हैं और फिर बस.........।

यह है आज के किसान का प्रस्थान।

आज किसान थोड़ी-थोड़ी भूमि के लिये तरस रहे हैं। जमीन और आबादी सब पर तो जमींदारों का प्रभुत्व है फिर किसान अपने मवेशियों के रखने का प्रबंध कहाँ करें? जानवर रखने के लिये उसे चारागाह की आवश्यकता है। किन्तु चरागाहें तो हिन्दोस्तान में मिट-सी गई हैं। इस प्रकार की उत्तम चरागाहें जमींदारों ने नष्ट करके खेत बना लिये. जिससे उनकी आमदनी कुछ बढ़ गई। जो भूमि चरागाहों के रूप में छोड़ दी गई, वह है निरी ऊसर जिस पर किसी प्रकार के चारे की आशा करना व्यर्थ है। नतीजा यह हुआ कि अब भारत में पशु-पालन भी मिटता जा रहा है और किसानों की इस प्रकार को संपत्ति भी लुप्त-प्राय होती जा रही है।

अँग्रेजों के शासन-काल में तरह-तरह की मशीनों का आविष्कार हुआ और इस तरह हमारे देहाती व्यवसाय प्रोत्साहन न पाकर मिट गये। इन बेकार दस्तकारों ने तंगदस्ती की हालत में मिलों के दरवाजे खटखटाये। रोटी की आशा में उन्होंने कड़ी

मेहनत भी करने के लिये कमर कसी। किन्तु मिल की कड़ी मेहनत और धुँयें की मार ने उन्हें आज निर्जीव-सा बना दिया है और आज वही दस्तकार मुर्दों की सी सूरत लिये हुये अपने जीवन को कोस रहे हैं। इस मिल की महामारी के शिकञ्जों में फँसने वाले, अधिकतर हमारे देहाती हैं जो जमींदारों के डण्डों की चोट की अपेक्षा मिलों में काम करके धीरे-धीरे अपना-अपना सर्वनाश करना अच्छा समझते हैं।

यह तो हुआ एक पहलू। अब दूसरा पहलू लीजिए। अपढ़ किसान, पटवारी को ही जमीन संबंधी तमाम कानूनी बातों का पटु समझता है। अपनी बहू बेटियों के जेवर गिरवी रख कर वह बेचारा पटवारियों की क़दम बोशी करता है। उसे आश्वासन भी मिल जाता है, किन्तु मौक़ा पड़ जाने पर पटवारी के खाता, खसरा खितौनी वग़ैरह उलटे दिखाई देते हैं। पहले जो किसान धन जन और मन से उनकी सेवा में तत्पर रहा, उसके बजाय उसी की जमीन पर कोई दूसरा काबिज दिखाई देता है। किसान बेचारा रो कर रह जाता है।

पुलिस के कारनामों ने भी किसानों की दशा में चिन्ताजनक हेर-फेर कर दिया है। गाँवों में आये दिन तरह-तरह की वारदातें होती रहती हैं। पुलिस उनकी जाँच के लिये आती है और ग़रीब किसानों के सूखे निवालों पर ऐय्याशी के साथ गुज़र करती है। मुखिया की सलाह से कभी-कभी निरपराध ग्रामीण अमुक जुर्म बता कर बाँध लिये जाते हैं और फिर उनसे कुछ रुपया ऐंठ कर

उन्हें रिहा कर दिया जाता है। वे बेचारे अपनी औरतों के जेवर, खाने-पीने के बरतन और कभी-कभी पहनने-ओढ़ने के कपड़े तक बेचकर इस प्रकार की मुसीबतों से अपना गला छुड़ाते हैं।

वर्तमान कॉंग्रेस सरकार का रुख इस ओर भी गया है और उसने रिश्वत के मामलों की जाँच के लिये एक डिपार्टमेण्ट ही अलग क़ायम कर दिया है, किन्तु हम फिर भी देखते हैं कि इस प्रकार की अनधिकार चेष्टायें नित्य-प्रति होती ही रहती हैं। ग़र्ज़ हम देख रहे हैं कि इस प्रकार की आकस्मिक प्रताड़नाओं से हमारे ग्रामीणों का जीवन इतना बिंध गया है कि यदि उनमें शीघ्र ही सुधार न किया गया तो मनुष्यता के लिये यह एक बड़ा भारी अपवाद हो जायेगा।

ग्रामीणों की इस प्रकार की चिन्ताजनक अवस्था सुधारने के लिये हमें क्या करना है, उनको शिक्षित और खुशहाल बनाने के लिये हमें किन साधनों का अवलम्ब लेना है, अगले परिच्छेदों की बातें हैं। इस परिच्छेद में तो हमें केवल वर्तमान दशा और उससे सम्बन्धित अपने देहातों की दशा का विश्लेषण करना है। साथ ही यह भी बताना है कि मौजूदा किसान आज किन कठि-नाइयों को पार करता हुआ अपना जीवन बिता रहा है।

सूद ने जितनी तरक्क़ी इस युग में की है, उतनी शायद पहले कभी न की हो। रुपये में आध आना, एक आना, दो आना और चार आना तक ले लेना तो एक मामूली बात है। किन्तु हमारे सामने पेशावरी पठानों के ऐसे भी उदाहरण हैं जो रुपये में छः

आने, आठ आने तक माहवारी सूद के रूप में वसूल कर लेते हैं। उनके वसूल करने का ढंग इतना दर्दनाक होता है जो मनुष्यता से बिल्कुल परे होता है। उन्हें छोड़िये क्योंकि वह तो एक कट्टर क़ौम है। हमारी अपनी क़ौमों में से ही लोग महाजनी या लेन-देन करते हैं, वे भी अपना रुपया वसूल करने में कुछ कम बेरहमी नहीं दिखाते। ब्याज की अधिकता से ग़रीब किसान छोटी-से-छोटी रक़म भी नहीं अदा कर पाता और उसके बदले में वह अपनी चिर सञ्चित पूंजी, ज़मीन, दरख़्त, पशु और मामूली चाँदी के ज़ेवर से हाथ धो बैठता है। फिर भी क़र्ज़ से उसे मुक्ति नहीं मिलती और अन्त में कड़ी मेहनत करके सरमायेदारों के टुकड़ों पर उसे अपनी जिन्दगी बसर करनी पड़ती है।

क़र्ज़ लेने की वर्तमान प्रथा भी निन्दनीय-सी है। सादे इन्दु-लतलब रुक्के पर टिकटें लगाकर क़र्ज़दार से निशान ले लिया जाता है। फिर जब जी चाहा उस रुक्के पर एक बड़ी रक़म चढ़ा कर बेचारे ग़रीब पर नालिश कर दी। अदालतें कानून पर चलतीं हैं। नतीजा यह होता है कि ग़रीब किसान के ऊपर डिग्री हो जाती है और वह लुट जाता है।

हमारे भोले किसान, अपनी तक़दीर और कलि-युग को कोस कर ही अपनी अवस्था पर संतोष कर लेते हैं। उनका कहना है कि ईश्वर का हमारे ऊपर कोप है, वरना इन्हीं ज़मीनों में हमारे पूर्वजों ने मनमाना अन्न पैदा किया है। इस प्रकार भाग्य को दोषी ठहरा कर हमारे किसान अपनी अज्ञानता प्रकट करते हैं।

वे इस बात को जानते हैं कि खेतों में खाद डालने से पैदावार बढ़ सकती है। किन्तु वे लाचार हैं, उनके पास ऐसे साधन नहीं जिनसे वे बढ़िया खाद मुहैय्या कर सकें। गोबर ही उनकी एक मात्र खाद रह गई है। किन्तु यह खाद भी वे प्रचुर मात्रा में नहीं जुटा पाते क्योंकि उन्हें मजबूरन गोबर जलाना पड़ता है जिससे खाद का एक बहुत बड़ा अंश मिट जाता है।

आज दुनियाँ में दलित-देशों के उत्थान के नाम पर जो कारगुजारियाँ हो रही हैं, वे आर्थिक लूट और साम्राज्य शाही पैशाचिक भूख के सिवा और कुछ नहीं है। मौजूदा व्यवसाय और वाणिज्य केवल शासित जाति के रक्त शोषण का एक जाल मात्र है। जिसकी ओट में आज हमारे अपने तमाम उद्योग और धन्धे भस्म कर दिये गये हैं। विदेशी माल हमारे मत्थे जबर्दस्ती मढ़कर हमें अपनी जरूरियात हल करने के लिये दूसरों के सामने हाथ फैलाना सिखाया जा रहा है और साथ ही सिखाया जा रहा है गुलामी का पापी पाठ।

शासक जाति जबतक अपनी शासित जाति की आर्थिक अवस्था से लेकर मानसिक अवस्था तक अधिकार नहीं कर लेती तबतक उसे चैन नहीं पड़ता। यही हाल हमारे देहातों का भी हुआ। उनका धन तो पहले ही लुट चुका था अब उनकी आत्मा पर भी अपने प्रभुत्व का सिक्का जमाने की ख्वाहिश की जा रही है यह कोशिश सफल होगी या नहीं, यह तो भविष्य के गर्भ की बात है।

साम्राज्य शाही इस राक्षसी भूख और बर्बर-नीति के फन्दे में पड़कर दुनिया के न जाने कितने राष्ट्रों की आदर्श सभ्यतायें महानाश की ओर प्रस्थान कर गईं ।

संसार को सभ्यता का पाठ पढ़ाने वाला रोम, आज अपने अतीत गौरव के लिये सिसक रहा है। महात्मा बुद्ध के पढ़ाये हुये पाठ वाला शान्ति का पुजारी चीन, आज रक्त के आँसू रो रहा है। स्वच्छन्द पार्वतीय प्रदेश पर विहार करने वाले इथोपियन और उनके सम्राट आज ठोकरें खाते फिरते हैं । विदेशियों की पैशाचिक आर्थिक भूख ने ही इनकी सत्ता दुनियाँ के पर्दे से मिटा दी। और अब भी अपने इस निन्दनीय कार्य पर क़ायम हैं ।

हम अठारहवीं शताब्दी तक अपने देश को पूर्ण रूपेण समृद्ध-शाली देखते रहे और "जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी" का महा मंत्र जपते रहे । किन्तु इसके बाद ही हमारी वह बर्वादी आरम्भ हुई जिसे लिखने में इतिहासकार भी संकोच करते हैं।

हमारी बर्बादी हमारी कमज़ोरियों के साथ-साथ बढ़ती गई। सन १८१३ के बाद से हमारे देश के कपड़े का परिमाण जो दूसरे देशों को जाता था, कम होने लगा। और धीरे-धीरे कुछ ही दिनों के बाद हमारे शहरों की बाजारें विदेशी कपड़ों से पाट दी गईं। अब धीरे-धीरे इंगलैंड से हमारे यहाँ सूत, ऊन, मशीनें तथा अन्य जरूरियात की चीजें ढेर-की-ढेर आने लगीं और बदले में हमारे यहाँ से रुई, अनाज, चमड़ा, सोना और चाँदी ढोई जाने लगीं ।

इस प्रकार हमें क़ायम रखने वाली सबसे मूल्यवान वस्तु अनाज का हमारे लिये अभाव होना शुरू हुआ।

धन-मन और साधन, खो जाने के बाद हिन्दोस्तान पर ग़रीबी और गन्दगी का प्रसार हुआ और साथ ही इनके प्लेग, महामारी हैजे और दुर्भिक्षों ने भी जोर पकड़ा। किन्तु ये सब तो हमारे भुगतने की बातें थीं, राज्य-व्यवस्था इससे बिल्कुल उदासीन रही और अपने काम पर पूर्ण रूपेण दृढ़ रही।

सन् १८७६—७७ में भारत वर्ष एक बड़े दुर्भिक्ष के चंगुल में फँसा। चारो ओर त्राहि-त्राहि मच गई। पापी भूख को शांत करने के लिये अनाज के अभाव में ग़रीबों ने जानवरों की तरह पेड़ों की सूखी छालें और पत्तियाँ तक खाईं। बेचारे ग़रीब मक्खियों की मौत मर रहे थे। इतना सब कुछ हुआ किन्तु फिर भी उस वर्ष इतना अधिक अनाज भारत से विलायत भेजा गया। जितना पहले कभी नहीं रवाना किया गया था।

कौन ऐसा पाषाण हृदय होगा जिसकी छाती इन दर्दनाक बातों को पढ़ कर न फटे और कौन ऐसा स्वतंत्र राष्ट्र न होगा जो हमारी इन बेबसी पर खून के आँसू न रोये।

देहात के उद्योग

विश्व परिवर्त्तनशील है। इसमें प्रतिक्षण परिवर्त्तन हुआ करते हैं और कभी-कभी इतने महत्व पूर्ण परिवर्त्तन हो गुजरते हैं कि हम उन्हें इतिहास-बद्ध करने के लिये लाचार हो जाते हैं। जिन राष्ट्रों का नाम दुनियाँ ने कभी सुना भी न था, वही आज उन्नति के शिखर पर पहुँच रहे हैं और जिन देशों की ख्याति चारों ओर छाई हुई थी, वे आज विनाश के कंटकाकीर्ण पथ में भटक रहे हैं।

हिन्दोस्तान के भाग्य का सितारा भी आज धीरे-धीरे साम्राज्य लोलुपता के प्रगाढ़ अन्धकार में विलीन हुआ जा रहा है। हमारे अपने घरेलू उद्योग, जिन पर हमें नाज़ था, मिट गये। अब रहे-सहे मामूली उद्योग और धंधे भी मिटते नजर आते हैं। यदि अपनी इस एक मात्र जीविका को भी हम खो बैठें तो हमारा भविष्य क्या होगा, यह प्रत्यक्ष है।

हमारे अधिकांश उद्योग, हमें धोखा देकर या जबरन हमसे

छीन लिये गये, किन्तु अब भी कुछ ऐसे छोटे-मोटे उद्योग हैं, जिन्हें हम जानते हुये भी अपनी लापरवाही के कारण नष्ट कर रहे हैं।

भारत एक कृषि-प्रधान देश है। इसकी अधिकांश जनता अपना निर्वाह खेती पर ही करती है। कुछ इने-गिने व्यक्ति ऐसे हैं जो अन्य प्रकार के उद्योग-धन्धों में लगे हुये हैं। किन्तु इस प्रकार के उद्योग-धन्धे आजकल नहीं के बराबर हैं। जो हैं भी उनमें इतनी बचत या सहूलियत नहीं है कि जन-समुदाय का ध्यान उस ओर आकर्षित हो।

भारत के मुख्यतः समस्त प्रान्तों में खेती का कारबार अधिकता से होता है। जिसमें पञ्जाब, युक्त प्रान्त और बङ्गाल विशेष उल्लेखनीय हैं। कहीं-कहीं पहाड़ी जगहों में चाय की खेती भी होती है। इस प्रकार हिन्दोस्तान में हर प्रकार की जिन्सों की अच्छी पैदावार होती है।

हिन्दोस्तान में बर्बादी का जमाना होते हुये भी इतनी फसल तैय्यार होती है कि यदि वह अन्य देशों को रवाना न की जाय तो हमारे भरण-पोषण भर के लिये पर्याप्त है। किन्तु साथ ही यदि भारत की उपज बाहर न रवाना की जाय तो आज सभ्यता का दम भरने वाली विदेशी क़ौमें एक-एक दाने के लिये तरस कर मर जाँय। यह है हमारा त्याग और बलिदान। हम अपना पेट काटकर अपने बच्चों को बिलखता छोड़कर इस बात के लिये बाध्य हो जाते हैं कि अपनी गाढ़ी कमाई की उपज दूसरे देशों को रवाना करें।

खेती की दशा आज इतनी चिन्ताजनक हो रही है कि उसका सर्वेसर्वा किसान भी आज इस काम को छोड़कर किसी अन्य व्यवसाय को ज्यादा तरजीह दे रहा है।

यहाँ के किसान ग़रीबी से इस तरह जकड़े हुये हैं कि उनकी वार्षिक आय शून्य के बराबर है। जो कुछ, वर्ष के अंत में उन्हें अपने परिश्रम का फल मिलता है, उसका अधिकांश हिस्सा महाजन के क़र्ज अदा करने और ज़मीन के लगान भुगतान में खप जाता है फिर उन्हें दोनों वक़्त भर पेट भोजन और शरीर की आबरू ढाँकने के लिए कपड़ों तक के लाले पड़ जाते हैं।

अर्थशास्त्र के विद्वानों की रिपोर्टों से पता चलता है कि हिन्दोस्तान के किसानों पर ऋण का औसत लगभग ६०० करोड़ रुपया है। यानी प्रत्येक गृहस्थ पर लगभग २००) रुपये का अवहनीय ऋण का बोझ है। इतना क़र्ज बढ़ा क्यों! इसका उत्तर साफ़ है, खेती करने से अब उन्हें इतनी फसल नहीं मिलती जिससे वे इस ऋण के बोझ से बच सकें। यहाँ की जमीन में फसल न पैदा होने का प्रधान कारण है, किसान का जमीन के अधिकार से बंचित रहना। किसान कड़ी मेहनत करके अन्न पैदा करता है, उससे हम सब का पेट पालता है फिर भी ज़मीदार मौक़ा पाने पर उसकी ज़मीन हड़प लेते हैं।

यदि किसान ने आशा वश ज़मीन की जुताई अच्छी करके और उसमें खाद डाल कर उसे उपजाऊ बनाया तो ज़मीदार की गिद्ध-दृष्टि उस पर जम जाती है और शीघ्र ही उस ज़मीन के

लगान में इजाफ़ा कर दिया जाता है। सन् १९३३ में भारत के बिभिन्न प्रान्तों में लगभग २४००० मुक़दमें इजाफ़ा लगान के संबन्ध में दायर हुये थे। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि ज़मींदार कितनी ज्यादतियाँ करते रहते हैं। ग़रीब किसानों के पास इतना धन नहीं कि वे सरमायेदार ज़मींदारों का मुक़ाबला करने के लिये अदालतों के दरवाज़े खटखटायें। बेचारे बेज़बान पशुओं की तरह अपने ऊपर किये गये अत्याचारों को सहते रहते हैं और उफ़ तक नहीं करते।

अब धीरे-धीरे खेती का भी सर्वनाश हुआ चाहता है। क्योंकि सैकड़े पीछे ७० से लेकर लगभग ९० किसानों को क़र्ज़ या बक़ाया लगान में अपने घर,बाग़, ज़मीन और बैल आदि कुर्बान करके गाँव छोड़ कर भागना पड़ता है। वे बेचारे शहरों में आ कर या तो मज़दूरी करते हैं या फिर भूख से तंग होकर भीख माँगते हैं।

भारत का दूसरा उद्योग पशु-पालन भी जो क़रीब-क़रीब कृषि के मुकाबले ही का था, नष्ट हो रहा है। एक ज़माना था, जब कहा जाता था कि यहाँ घी, दूध की नदियाँ बहा करती थीं किन्तु अब वही घी आज दवा के रूप में शीशियों और डिब्बों में भर कर बेचा जाता है। दूध का भाव इतना तेज हो गया है कि मध्यम श्रेणी तक के व्यक्ति उसे खरीदने में असमर्थ से हो रहे हैं। इस व्यवसाय के ह्रास का मुख्य कारण है, उत्तम चरागाहों का कुप्रबन्ध। जब किसान को अपने पशुओं के बसर के लिये स्थान ही नहीं

मिलेगा तो वह किस बल पर पशु-पालन करेगा।

आज बैल खरीदने के लिए किसान को महाजन से रुपया कर्ज लेना पड़ता है। उसके पास गायें नहीं रह गईं जिनसे वह अच्छे बछड़े प्राप्त कर सके। नतीजा यह हो रहा है कि महाजन का रुपया न अदा कर सकने पर उसे अपने बैलों से भी हाथ धोना पड़ता है।

पशु-पालन में प्रोत्साहन देना तो दूर रहा आज तो फैन्सी जूते बनाने के लिए जीवित पशुओं की बलि दी जाती है। यों भारत के देहातों का यह व्यवसाय भी अब छिन्न-भिन्न हो गया।

तीसरे प्रकार का उद्योग जो देहातों में मिलता है, वह है रुई की धुनकाई और उससे सूत तैयार करना। एक ज़माना था जब हमारे देहातों के प्रत्येक घर में चरखा चलाने की प्रथा-सी थी। घर की बुढ़ियाँ अपने फ़ालतू समय में चरखा कात कर सूत तैयार करती थीं, जिससे परिवार के लिये वर्ष-भर को कपड़े तैय्यार हो जाते थे। इससे धुनइयों का भी बड़ा लाभ होता था क्योंकि चर्खे की माँग के कारण उन्हें भी वर्ष-भर काम में लगा रहना पड़ता था। किन्तु अब मिल के सूतों की सस्तगी ने इस उद्योग पर भी ठोकर मार दी।

हाँ, इधर जब से काँग्रेस ने ज़ोर पकड़ा है तब से फिर से इस धन्धे में कुछ जान-सी आगई है और अब फिर से देहातों में कहीं-कहीं चर्खे से कताई शुरू हुई है। कोरियों और जुलाहों ने भी फिर से अपने इस धन्धे को हथियाया है और अब देहातों में

करघे से या अन्य तरीक़ों से कपड़ा बनना शुरू हुआ है।

इसके साथ ही केवटों की क़ौम टाट-पट्टियाँ बनाने का काम कर रही हैं। चूंकि किसानों को अपनी गाड़ियों के लिये पाखरी, अपनी चौपालों के लिये टाटों की आवश्यकता पड़ती रहती है। इसलिये भारत के ग़रीबों की कुछ संख्या इन धन्धों में भी लगी है।

कहीं-कहीं दरियाँ और क़ालीनों के भी कारख़ाने हैं और इटावा ज़िले में इस दस्तकारी का मुख्य केन्द्र है। वहाँ के जुलाहे और अन्य इसी प्रकार की क़ौमें इस व्यवसाय में काफ़ी तरक़्क़ी कर रही हैं और अच्छी-अच्छी दरियाँ वग़ैरह बना रही हैं। किन्तु अभी इन छोटे-छोटे व्यवसायों के लिये कोई उचित प्रोत्साहन न मिल सकने के कारण जनता का विशेष झुकाव इस ओर नहीं है। जो लोग इस कार्य में लगे हुये हैं, वे कड़ी मेहनत करके दिन-भर में अपने पेट भरने के लिये कमा ही लेते हैं। यदि हम अपने देश की ही बनी हुई चीज़ें ख़रीदने का अहद कर लें तो शायद इस प्रकार के व्यवसाय ज़्यादा उन्नति कर सकें।

लकड़ी और लकड़ी के कोयले का भी धन्धा देहातों में दिखाई पड़ता है। ज्यों-ज्यों शहरों की आबादियाँ बढ़ रही हैं, त्यों-त्यों लकड़ी और लकड़ी के कोयले की खपत भी बढ़ रही है। इस तरह देहातों में लकड़ी काटने के लिये मज़दूरों की आवश्यकता पड़ती है और वे ग़रीब किसान जिनका सब कुछ महाजनों

और ज़मीदारों ने लूट लिया है, वे इस व्यवसाय में लगकर अपना पेट पालते हैं। किसान अपने बचत के समय में अपने बैलों की मदद से इस कटी हुई लकड़ी को शहरों में पहुँचाता है, और इस प्रकार कुछ-न-कुछ अपने पेट भरने भर को पा ही जाता है।

आज यदि मिलों और फैक्ट्रियों में पत्थर के कोयले का उपयोग न होता तो शायद यह लकड़ी का व्यवसाय चमक उठता और ग़रीब मज़दूरों को अपनी रोज़ी के लिये एक अच्छा प्रोत्साहन मिलता। किन्तु यह मशीन-युग इतना घातक सिद्ध हो रहा है कि हमारे घरेलू उद्योग और धन्धे इसके चक्कर में पड़कर ख़ाक हो गये ।

सोलहवीं और अठारहवीं शताब्दी तक हमारी बाजारें हमारे अपने मालों से भरी पूरी दिखाई पड़ती थीं। हम स्वावलम्बी थे, हमारी ज़रूरियात भी लगभग उतनी ही थीं जितनी कि आज हैं। और वे सब यहीं से पूरी होती थीं। तब हमारे वाणिज्य और व्यवसाय भी उन्नति के शिखर पर थे । आज हमारे व्यवसायों की हस्ती मिटा कर हमें दूसरों के मोहताज होना सिखाया जा रहा है। हम यदि फिर से अपने लुप्त व्यवसायों का अनुसन्धान करें और उन्हें आगे बढ़ावें. तो हमारे लिये क्षेत्र नहीं। विदेशी भड़कीली चीज़ों के सामने हमारी अपनी बनाई चीज़ की खपत नहीं।

असहयोग आन्दोलन ने खादी को प्रोत्साहन दिया। देश-भर

में सभायें हुईं। बड़े-बड़े लीडरों ने खादी के गुण गाये, विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार के नारे लगाये। नतीजा यह हुआ कि स्थान-स्थान पर खादी-संघ, चरखा-संघ आदिक न जाने कितने संघ स्थापित हुये और खादी बनाने का काम एक लम्बे पैमाने पर शुरू हुआ। इसमें देहात के जुलाहों, कोरियों और अन्य ग़रीब क़ौमों ने हाथ बटाया। किन्तु हिन्दोस्तान में कितने ऐसे आदमी हैं जो खादी पहनते हैं? कुछ इने-गिने। मिल के भड़कीले कपड़ों के सामने हमारा बाबू समुदाय खादी को तरजीह देना अपनी शान के खिलाफ़ समझता है। वे व्यक्ति, जिन्हें देश के पतन और महाविनाश का अन्दाज़ा हो चुका है, आज घर-घर स्वावलम्बी बनने का मंत्र फूँक रहे हैं। उनका कहना है कि हमें फिर से अपने प्राचीन उद्योग-धन्धों को अपनाना चाहिए किन्तु जब तक हमारी बाज़ारें हमारे माल का स्वागत न करेंगी तब तक हमारे सारे प्रयत्न निष्फल से ही रहेंगे।

उपरोक्त उद्योगों के अलावा भारत के किन्हीं-किन्हीं प्रान्तों में फलों का व्यवसाय भी दिखाई पड़ता है। काश्मीर और पञ्जाब इस व्यवसाय के मुख्य केन्द्र हैं। इन्हीं की देखा देखी अन्य प्रान्तों में भी बाग़ लगाने की प्रथा चल निकली है। केला, संतरा, सेब, नासपाती, कटहल, अमरूद, आम और जामुन मुख्य चीजें हैं जिनका व्यवसाय अब दिनों दिन बढ़ता जा रहा है। किन्तु इस प्रकार के बाग़ लगाने के लिये रुपये की ज़रूरत होती है और इसलिये इस प्रकार के फलों के व्यवसाय ज़्यादातर अमीरों के

हाथ में हैं। ग़रीब किसान तो महज़ आम, जामुन, कटहल, अमरूद और नींबू का ही व्यवसाय करते हैं। नागपुर के देहातों के किसान ज़्यादातर सन्तरे के व्यवसाय में लगे हुये हैं। इसी तरह इलाहाबाद के देहातों में अमरूद, कलकत्ते के आस-पास केला और यू० पी० में आम का व्यवसाय अच्छा होता है।

भारतवर्ष की शान-शौक़त और अय्याशी नेस्त-नाबूद हो चुकी है, किन्तु अभी शाहाना बू बाकी है। इसलिये पान की खपत भी यहाँ अच्छी होती है। शहरों में पान की उपज नहीं हो सकती। इसलिए यह व्यवसाय भी देहाती तंबोलियों को रोटियाँ दे रहा है। महोबा, हुशिंगाबाद, बनारस, और कलकत्ते के देहातों में यह व्यवसाय अच्छा चल रहा है।

इस प्रकार हमने देखा कि भारत के उद्योग आज ऐसे उद्योग रह गये हैं, जिन्हें उद्योग कहते हुये हमें शर्म मालूम होती है। यह बात नहीं है कि हमें इन उद्योगों पर गौरव नहीं है, हमें इन रहे-सहे उद्योग-धन्धों पर भी गर्व है, किन्तु सन्तोष नहीं। दिन-भर एड़ी-चोटी का पसीना एक कर देने पर भी इन उद्योगों में मुश्किल से इतने पैसे मिलते हैं कि परिवार का भरण-पोषण अच्छी तरह से किया जा सके।

आज देहातों के उद्योगों का मार्ग कठिनाइयों और रुकावटों से खाली नहीं है किन्तु ये कठिनाइयाँ और रुकावटें उस समय ज्यादा खल जाती हैं जब हम अपने रास्ते को अपने ही स्वजनों से अवरुद्ध देखते हैं। जब हम देखते हैं कि हमारे अपने ही कहे

जाने वाले भारतीय हमें आगे बढ़ने से रोकते हैं और प्रतिपल हमारा खून चूसने के लिये तैय्यार रहते हैं तो हमारी आत्मायें थर्रा उठती हैं। हम उनका शिष्ट प्रतिवाद करते हैं किन्तु इससे कोई लाभ नहीं होता और अशिष्ट प्रतिवाद करके हम गृह-कलह के लिए तैय्यार नहीं हैं।

ज़माना उन घड़ियों के बीच होकर गुज़र रहा है, जब देश के लाखों ग़रीब किसान कड़ी धूप और कड़ाके की सर्दियों में अपनी हड्डियाँ तथा पसलियाँ सुखाकर अपनी रोटी के लिये अपनी अमूल्य जीवन की कुर्बानियाँ कर रहे हैं। घुट-घुट कर मरने वाले इन अभागे निराश्रित-किसानों के बन्धन-मुक्ति की समस्या आज हमारे देश की अत्यंत महत्व-पूर्ण और जटिल समस्या है। हम जानते हैं कि मृत्यु से खेलने वाले इन निरीह बेज़बान प्राणियों की बर्बादी का उत्तरदायित्व किस पर है। किन्तु इतना जान लेने से ही हमारा उत्तरदायित्व नहीं ख़तम होता : हमें तो कुछ-न-कुछ इन बुझती हुई दीप-शिखाओं के लिए करना ही पड़ेगा।

कृषि कार्य—उसका अतीत और भविष्य !

भारत के पुराने-से-पुराने और नये-से-नये इतिहासों को पढ़कर हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कृषि-कला यहाँ की प्राचीनतम् कला है। यह हो सकता है कि ज़माने की रफ्तार के साथ-साथ अब इस कला के भी तौर-तरीक़े बदल गये हों किन्तु जो ध्येय आज के किसान का है वही प्राचीन युग के किसान का भी था।

मनुष्य की अवश्यकतायें ही मनुष्य को काम सिखाती हैं। जब तक उसे भर पेट भोजन और इच्छानुसार कपड़ा तन ढाँकने को मिलता रहता है, तब तक काम जैसी चीज से वह परहेज रखता है किन्तु ज्योंही उसे पेट की ज्वाला ने सताया त्योंही वह शैतान की तरह काम में जुट जाता है।

यही हाल भारत के प्राचीन कृषकों का हुआ। कहा जाता है कि पहले ज़मीन इतनी उर्वरा थी कि यहाँ इस प्रकार की फ़स्लें बिला परिश्रम ही पैदा हुआ करती थीं। किन्तु ज्यों-ज्यों आबादी बढ़ती गई, त्यों-त्यों अन्न की भी ज्यादा जरूरत हुई और इस प्रकार खेतो

की नींव पड़ी। धीरे-धीरे लोग इस ओर झुके।

भारत की अधिकांश जनता खेती में लगी हुई है। अनुमान ऐसा किया जाता है कि जितनी संख्या में यहाँ की जनता इस कार्य में लगी हुई है, उतनी किसी अन्य देश की नहीं। लगभग ७२ प्रतिशत भारत की जन संख्या खेती पर ही निर्भर है। जिस काम पर इस क़दर जन समुदाय संलग्न हो, उस में उन्नति होना नितान्त आवश्यक है। किन्तु सरकारी रिपोर्टों से पता चलता है कि जितनी मालगुज़ारी भारत से वसूल की जाती है, उसका एक बहुत छोटा अंश इस कार्य में व्यय किया जाता है जिसका औसत प्रति आदमी ८ पाई होता है। अमेरिका की आबादी में केवल ३० सैकड़ा किसान हैं, किन्तु वहाँ की सरकार इस कार्य में भारत से ८ गुना अधिक व्यय करती है। यही कारण है कि वहाँ के किसान अच्छी फ़सलें पैदा करते हैं और चैन की वंशी बजाते हैं।

जापान की आबादी महज ६ करोड़ है फिर भी वहाँ की सरकार खेती की बुनियाद को समझती है और इस विषय में भारत से ६ गुना अधिक व्यय करती है। जब इतने छोटे-छोटे राष्ट्र अपनी तरक्की के लिये इतना सब करें तो हम क्यों इतना पीछे रहें।

यद्यपि हमारी मौजूदा सरकार अब इस ओर ज्यादा प्रयत्न-शील है और खेती व किसानों की उन्नति के लिके तरह-तरह की सुविधायें उपयुक्त कर रही है किन्तु फिर भी ये सुविधायें अभी पर्याप्त नहीं हैं। कर्ज और ग़रीबी से दबे हुये किसान की मुक्ति के लिये एक युगान्तरकारी उन सुधारों की जरूरत है जिसमें किसान

को रौंदने वाले काले कानूनों की इति श्री हो जाय।

आज भारत में कल-कारखाने और अन्यान्य फैक्टरियों को देखकर भले ही कोई कह दे कि हमारा देश उन्नति के मार्ग पर चल रहा है। किन्तु क्या किसी को यह भी सोचने का मौक़ा मिला है कि कितने एकड़ उपजाऊ ज़मीन आज टाटा नगर घेरे हुये है और कितने एकड़ ज़मीन पर बंबई, कलकत्ता, अहमदाबाद, मद्रास और कानपुर के मिल खड़े हुये हैं।

ऊँची चिमनियों के धुयें की विशाक्त छाया में आज वहाँ के किसान छिप गये हैं। कल-कारखानों के घोर रव में किसान जैसे क्षीण-प्राणी की आवाज़ विलीन हो गई है।

वर्तमान भारत अवनति और महा विनाश के पथ पर होते हुये भी इतने अधिक परिमाण में चीजें प्रस्तुत करता है जितना अन्य देश स्वप्न में भी नहीं तैयार कर सकते।

चीनी यहाँ से बाहर को नहीं रवाना की जाती किन्तु फिर भी दुनियाँ में सब से अधिक चीनी हिन्दोस्तान में ही तैयार की जाती है। हिन्दोस्तान में पाट की पैदावार भी बहुत अच्छी होती है और बजाय भारत के अन्य किसी देश में इसकी उपज नहीं होती।

खेती पर देश का प्रत्येक व्यवसाय और कल-कारखाने निर्भर हैं। इसी के बूते आज न जाने कितने व्यक्तियों ने अपने को समृद्धि शाली बना लिया। किन्तु इसकी शक्ति को क़ायम रखने के लिये बेचारे किसान ने अपने अस्तित्व की कुर्बानी दे दी।

हमारे सामने भारत की खेती और उसके तौर-तरीकों का नक्शा है। वे तरीके कितने दोष पूर्ण हैं, यह सब को मालूम है। हाँ कहीं-कहीं यह प्रश्न जरूर उठता है कि प्राचीन युग में भी तो इन्हीं तरीकों से खेती होती थी फिर क्या कारण है कि उस युग में पैदावार अधिक होती थी। सीधी-सी बात है, वह युग ही और था। किसानों का अपनी जमीनों पर अधिकार था और इसीलिये वे उसके बनाने में कोई कसर न रखते थे। दूसरी बात, राज्य की ओर से भी काफी सहायता मिलती थी। किन्तु आज जमाना बिल्कुल इसके विपरीत है। किसान तो एक भाड़े का-सा टट्टू रह गया है। जिस ज़मीन पर वह भूखा नंगा रहकर अपना प्राण खपाया करता है, उस पर उसका कोई अधिकार नहीं। उसके पास इतने साधन भी नहीं कि अच्छी खाद की व्यवस्था कर सके। बरसों तक खेत बिना खाद के ही जोते और बोये जाते हैं। नतीजा यह होता है कि धीरे-धीरे उनकी उर्वरा-शक्ति मिट जाती है और वे खेत एक ऊसर के सिवा और कुछ नहीं रह जाते।

आज किसान के पास इतना धन नहीं कि वह अच्छी नस्ल के हृष्ट-पुष्ट बैल खरीद सके। दुबले-पतले बैलों से खेत की जुताई गहरी नहीं हो पाती और न बड़े-बड़े ढेले ही फूट पाते हैं। इस प्रकार की हल्की जुताई वाले खेतों में बोया हुआ बीज सूरज की कड़ी धूप पाकर जल जाता है और फसल नेस्तनाबूद हो जाती है।

बड़े-बड़े जंगली मैदान काटकर अब मिल और कारखाने

खोते जा रहे हैं ; जिससे बारिश में भी गड़बड़ी पड़ जाती है। पानी बरसाने में जंगल बड़ी सहायता करते हैं। वैज्ञानिकों ने यह बात सिद्ध कर दी है कि जहाँ जंगल ज्यादा होते हैं, वहाँ पानी अधिक बरसता है। किंतु जंगलों के अभाव में अब कहीं-कहीं तो ऐसी अनावृष्टि हो जाती है कि बड़ी त्राहि-त्राहि मच जाती है साथ ही कहीं-कहीं अतिवृष्टि से भी काफी नुक़सान होता है।

भारत का कृषि कार्य यदि इसी प्रकार रहा तो उससे भारत के भविष्य के लिये कोई आशा नहीं की जा सकती। किन्तु यदि इसमें कुछ सुधार हुआ तो मुमकिन है, एक बार फिर से हम स्वर्णयुग की कल्पना कर सकें।

वर्तमान किसान और कृषि-कार्य इतनी पतितावस्था पर पहुँच गये हैं कि उनके उत्थान के लिये अनवरत परिश्रम की आवश्यकता है। इसमें न केवल किसानों का हित है बल्कि यह सब हमारे भाग्य-निर्माण की बातें हैं। आज यदि एक साथ दुनियाँ के किसान अपने औज़ार रखकर हड़ताल कर दें तो हम एक-एक दाने के लिये तड़प कर मर जायँ। और थोड़े ही दिनों के अन्दर दुनियाँ के परदे से हमारी हस्ती नेस्तनाबूद हो जाय।

वर्तमान कांग्रेस गवर्नमेंट से पूर्व तक तो यहाँ के कृषि-कार्य की अवस्थानिहायत चिंताजनक रही, किंतु जब से मौजूदा गवर्नमेंट ने शासन-भार सँभाला तब से इस ओर विशेष उन्नति दिखाई देती है और आशा की जाती है कि बहुत ही शीघ्र भारत के किसान खुशहाली के दर्जे पर पहुँच जायँगे।

काँग्रेस-सरकार ने किसानों के बक़ाया लगान को मुलतवी या माफ़ करके, एक बहुत बड़ा उपकार किया है। बेदखलियाँ भी क़रीब-क़रीब कम हो रही हैं जिससे किसानों में फिर से एक बार आशा का संचार हो रहा है।

गाँवों में आर्गनाइज़रों की नियुक्ति भी एक विशेष महत्व रखती है और वे गाँवों में घूम-घूम कर किसानों के कष्ट-निवारण का प्रयत्न करते हैं। व्यवस्था ऐसी की जा रही है कि अब किसानों की सुविधा के लिये गाँवों में ऐसे गोदाम क़ायम किये जायँगे जो किसानों को बीज वग़ैरह देंगे। फ़सल तैयार होने पर उनसे वह बीज वसूल कर लिया जाया करेगा।

गाँव की हालत सुधारने में लिए स्वास्थ्य विभाग भी खोला गया है जो ग़रीबों की दशा पर ध्यान दे रहा है और दवाइयों वग़ैरह का अच्छा प्रबंध किया जा रहा है।

आज दूसरे देशों में भूमि के अभाव में भी इतनी अच्छी फ़सल तैय्यार होती है कि हमें दंग रह जाना पड़ता है। इसका मुख्य कारण, उनके खेती के तौर-तरीकों पर मुनहसिर है। वे विज्ञान की सहायता से खेत को इस क़ाबिल बना देते हैं कि उसमें अच्छी फ़सल पैदा हो। यह कहा जा सकता है कि दूसरे देश धनवान होने के कारण इन सब बातों के करने में सफल होते हैं और हम ग़रीब होने के कारण ये साधन नहीं उपयुक्त कर सकते। किंतु जो साधन हमें प्राप्त भी हैं, उनकी ओर भी हम अधिक ध्यान नहीं देते। जैसे खेतों में भेड़ बैठाने की प्रथा बहुत

पुराने ज़माने से चली आयी है। अब भी कुछ ऐसे फ़िरके हैं जो भेड़ें चराने का काम करते हैं और वे अपनी भेड़ों का गिरोह लिये हुये जगह-जगह घूमा करते हैं। किसानों को चाहिये कि वे ऐसे समय में उनका उपयोग करें। खेत में भेड़ बैठाने से यह लाभ होता है कि खेत में भेड़ों के पाख़ाने और पेशाब से उर्वरा शक्ति बढ़ती है और इस प्रकार फ़सल अच्छी तैय्यार हो सकती है।

दूसरी बात, भारत में आम, महुआ, और जामुन नीम आदि के पेड़ बहुतायत से पाये जाते हैं। यदि किसान बारिश शुरू होने के पहले थोड़ी सी मेहनत करके इन वृक्षों के सूखे पत्तों को एकत्रित करके गढ़ों में भर दें, और बरसात का पानी इन गढ्ढों में जमा होने दें; तो यही पत्ते सड़कर उत्तम खाद के रूप में तैय्यार हो सकते हैं। इस प्रकार खर्च से भी बचत हो जायगी और खाद भी अच्छी तैय्यार हो सकेगी।

भारत में पहले सिंचाई का भी प्रबन्ध अपने ही हाथ में था और आवश्यकता पड़ने पर किसान अपने बैलों और मोठ (पुर) की सहायता से अपने खेतों में पानी पहुँचाता था तथा अपनी फ़सल की रक्षा करता था। किन्तु ज्यों २ नहरें वग़ैरह बढ़ने लगीं त्यों-त्यों किसान इस ओर से उदासीन से होने लगे और बिल्कुल दूसरों पर ही आश्रित होगये। फल यह होता है कि जिन गाँवों में नहर या बंबे हैं, वहाँ तो कुछ सिंचाई हो जाती है नहीं तो सारी ज़मीन सूखी ही रह जाती है।

वर्तमान वैज्ञानिक युग में जहाँ हर तरफ़ मैशीनों और नवीन

यंत्रों की खोज की जा रही है, वहाँ यदि खेती के संबंध में भी अच्छे यंत्रों का आविष्कार हो तो बहुत अच्छा हो। हम यह मानते हैं कि वैज्ञानिकों ने इस ओर ध्यान दिया है और कुछ उपयोगी यंत्रों का आविष्कार भी किया है, किन्तु वे इतने क़ीमती पड़ते हैं कि साधारण कोटि का किसान उनसे किसी प्रकार का फ़ायदा नहीं उठा सकता।

यदि सरकार की दस गाँवों पीछे एक-एक गोदाम क़ायम कर दे जहाँ पर इस प्रकार के नवाविष्कृत यन्त्र रक्खे जाँय और किसानों की आवश्यकता और सुविधानुसार उन्हें वे यंत्र किराये पर दिये जाँय तो बड़ा उपकार हो। इस प्रकार के यंत्र लेने वाले किसान से एक शर्तनामा लिखवा लिया जाय और जमानत पर उसे गोदाम से यंत्र दे दिये जाँय। जो कुछ भी मुनासिब समझा जाय, उससे क़िराये के रूप में ले लिया जाय और वह रुपया फिर नये यंत्र तैय्यार करवाने में लगवा दिया जाय। इससे सरकार की आमदनी भी रुकेगी और किसान का काम भी सुविधानुसार चलता जायगा। कहीं-कहीं पर गन्ने से रस निकालने की मशीनों की ऐसी व्यवस्था है, १००या २०० मशीनें एक स्थान पर अकसर ख़रीद कर रख दी जाती हैं और ये मशीनें किसानों को क़िराये पर उठा दी जाती हैं। किसान इन मशीनों से अपनी जरूरियात हल कर लेता है और बाद में मालिक-कम्पनी को क़िराये सहित वापस कर देता है।

कृषि-सुधार के लिये कृषि प्रदर्शनियाँ भी सहायक सिद्ध हो

सकती हैं यदि उनकी व्यवस्था नियमानुसार और किसान की सुविधानुसार हो। वर्तमान कृषि-प्रदर्शनियाँ अँग्रेजी सभ्यता की साथी हैं। और इस प्रकार की जानकारी संबंधी बातें अधिकांश अँग्रेजी में ही लिखी मिलती हैं। एक ग़रीब किसान बावजूद प्रदर्शनी में आई चीजों के देख लेने के, और किसी भी प्रकार का ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकता। बेहतर हो यदि इस प्रकार की प्रदर्शनियाँ देहातों में की जाँय, और किसानों को कृषि के उन्नति के साधनों का अच्छा ज्ञान कराया जाय।

सबसे बड़ी असुविधा जो आज किसान के उन्नति में बाधक हो रही है, ज़मीन की अव्यवस्था है। हम देखते हैं कि किसान के पास जितनी भी ज़मीन है, वह एक स्थान पर नहीं है। इसका नतीजा यह होता है कि किसान को खेत जोतने-बोने और सींचने में बड़ी कठिनाई का अनुभव करना पड़ता है। यदि उसकी सारी ज़मीन एक स्थान पर होती तो संभव है, वह आशा से ज्यादा उन्नति कर सकता।

यद्यपि इस प्रकार की योजना में हाथ डालना एक बड़ी भारी मुसीबत का सामना करना है, किन्तु यदि मौजूदा काँग्रेस सरकार इस ओर ध्यान देकर ऐसी व्यवस्था कर दे कि किसानों की जमीनें बजाय अलग-अलग होने के एक ही स्थान पर हो जाँय तो कितना अच्छा हो। ग़रीबी के बोझ से दबे हुए किसान को एक बहुत बड़ा साहस मिल जाय।

हाँ एक बात जो आज के किसान के जीवन का अभिशाप

है, वह है पटवारियों की नियुक्ति। संभवतः गाँवों का पटवारी या तो उन्हीं गाँवों का होता है या फिर उन्हीं गाँवों के आस-पास का। पटवारियों के तबादिले भी सुनने में नहीं के बराबर आते हैं। फल यह होता है कि पटवारी एक प्रकार से अपना एकाधिपत्य क़ायम कर लेता है और जब जी चाहा, किसानों से घूस व रिश्वत लेता रहता है। भोले किसान, पटवारी को ही अँग्रेजी सल्तनत का सर्व-सर्वा समझते हैं, और उसकी मंशा के मुताबिक़ हमेशा चलते रहते हैं। अच्छा होता यदि सरकार कोई ऐसा नियम बना दे जिससे पटवारियों के भी तबादले होने शुरू हो जाँय और इस प्रकार उनकी जुलासता का अंत कर दिया जाय। यदि दूसरी तहसील का पटवारी, दूसरी तहसील में तैनात कर दिया जाय तो वहाँ की जनता से अनभिज्ञ होने के कारण उसका साहस ही न पड़ेगा कि किसी प्रकार की रिश्वत या बेगार ले।

कृषि की उन्नति की ओर आज शिक्षित समुदाय का भी ध्यान जा रहा है। वे अच्छी तरह समझ गये हैं कि केवल डिग्रियाँ ले लेना ही जीविकोपार्जन का साधन नहीं है। हमारी जीविका तो बिला कृषि की ओर झुके कभी नहीं चल सकती। इसी का फल है कि आज हम ऐग्रीकल्चर कालेजों में एक शिक्षित समुदाय को हल चलाते देख रहे हैं।

ज़माना इस क़दर का हो रहा है कि बेकारी की भीषण विभीषिका देश के कोने-कोने तक में अपना अड्डा जमाये है। एम्० ए० और बी० ए० पास शुदा नौजवान नौकरियों की तलाश

में अपनी जीवन-ज्योति तक गवाँ बैठते हैं। ऐसी अवस्था में क्या मैं आशा करूँ कि हमारे होनहार नवयुवक गुलामी का पीछा छोड़कर कृषि जैसे स्वतन्त्र व्यवसाय को अपनावेंगे ? इससे न केवल उनके दिन सुख से बीतेंगे बल्कि एक मजदूर समाज भी उन्हीं की ओट में दो टुकड़े सूखी रोटी के खा सकेगा।

देहातों में शिक्षा-कार्य

भारत के देहातों में शिक्षा-कार्य की कमी अत्यधिक खटकती है। करोड़ों की आबादी होते हुये भी अधिकांश जनता अपढ़ ही है। इस ओर हम जितना अधिक विचार करते हैं, उतनी ही अधिक ग्लानि हमें अपने हृदयों में मिलती है। दुनियाँ जिस देश के वेदान्त, अध्यात्म और अन्य ललित कलाओं की क़ायल है, वही देश आज अशिक्षा की आँधी में अपना सब-कुछ खो रहा है।

आज यदि भारत के कोने-कोने में शिक्षा का प्रचार होता और तक्षशिला एवं नालन्द की भाँति जगत् विख्यात विश्व विद्यालय क़ायम होते तो शायद हम दुनियाँ की सभ्यता को आज और भी कुछ पर्याप्त सामग्री भेंट कर सकते।

जिन महापुरुषों को भारत के गाँवों में शिक्षा की कमी महसूस हो रही है, वे बेचारे अपना सब-कुछ खपाकर इसकी उन्नति में प्रयत्नशील हैं। हम आज यदि सामूहिक रूप से इन इने-गिने

व्यक्तियों के सहयोग में लग जाँय तो एक बहुत बड़ा उपकार मनुष्यता के पक्ष में हो।

भारत में आज राष्ट्र की नवीन भावनायें हिलोरें ले रही हैं। एक कोने से लेकर दूसरे कोने तक जागृति का महामंत्र फूँका जा चुका है। करोड़ों नौनिहालों और बीरांगनाओं के हृदयों में देश-प्रेम का अनोखा आह्वान भर चुका है। ऐसी परिस्थिति में अपढ़ देहातियों ने भी अपनी तंद्रिलावस्था त्याग दी है और शिक्षित समुदाय के साथ वे भी अपनी रोटी की लड़ाई क़ायम किये हैं। किन्तु क्या ही अच्छा होता यदि आज भारत में आन्दोलन छेड़ने वाले किसान अपढ़ न होकर शिक्षित होते। ऐसी अवस्था में हमें दर-दर ठोकरें खाकर उन्हें आन्दोलन का ध्येय खुद न समझाना पड़ता बल्कि वे ही खुद हमारे दाहिने हाथ होकर हमारा नेतृत्व करते और तब हम शांति और सफलता पूर्वक द्रुतगति से आगे बढ़ सकते।

शुरू से लेकर अब तक जो भी कुछ शिक्षा-प्रचार के नाम से यहाँ हुआ है, वह बिल्कुल असंतोषजनक है। अब तक के सरकारी शिक्षा विभाग ने जितना रुपया शहरों की शिक्षा में व्यय किया है, उतना देहातों में नहीं। और अगर यह कह दिया जाय कि अब तक देहातों की शिक्षा की ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया तो कोई अत्युक्ति न होगी।

भारत में लगभग ६ लाख ८५ हजार ६६५ गाँव हैं। जिनमें २८ करोड़ ६४ लाख ६७ हजार २०४ व्यक्तियों की आबादी है।

यानी गाँव पीछे औसतन ४१८ मनुष्य बसते हैं। यह आबादी ग्रेट ब्रिटेन की आबादी से लगभग सात गुना अधिक है। किन्तु यहाँ के शिक्षा कार्य को देखकर बड़ा तरस आता है।

ग्राम-पाठशालाओं का सबसे बड़ा संबंध किसानों के बालकों की शिक्षा से है। भारत की तमाम आबादी पर ७२॥ फ़ीसदी कृषि-कार्य करने वाले व्यक्ति हैं। बड़े शोक का विषय है, इतने बड़े फ़िरक़े के लिये शिक्षा की शोचनीय व्यवस्था है। अंग्रेज़ी स्कूल अधिकतर शहरों या बड़े-बड़े क़स्बों में हुआ करते हैं। किसान यदि अपने बच्चों को शिक्षा देने का साहस भी करता है तो बमुश्किल तमाम मिडिल तक पढ़ा पाता है। इसके बाद उसके पास इतनी बचत नहीं कि वह ऊँची शिक्षा दे सके।

बहुतों का ख्याल है कि खेती करने के लिये शिक्षा लेना बेकार है क्योंकि यह एक ऐसा विषय है जिसमें शिक्षा की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। किन्तु मेरा अपना विचार है कि किसान के लिये शिक्षा नितांत आवश्यक है। हम देखते हैं, अशिक्षित किसानों का नैतिक और सामाजिक जीवन कितना नीरस और विषाद-पूर्ण होता है।

खेत, बैल और हल वह इन्हीं को सब कुछ समझता है। उसे इस बात का पता नहीं कि बारदोली के किसानों ने क्या-क्या मुसीबतें झेलीं। उसे इस बात का ज्ञान नहीं कि बङ्गाल में निलहे गोरों ने क्या-क्या कारगुज़ारियाँ कीं। दिन-भर कड़ी मेहनत करना और उसके बाद सो जाना, यही उसकी दिन चर्या

में दाखिल है।

अगर आज का हमारा किसान-समाज शिक्षित होता तो रात्रि के अवकाश में दुनियाँ की हलचल के साथ स्वाध्याय करके वह भी चल सकता। वह खुद ही इस बात की खोज करता कि दूसरे देशों में फसलें क्यों इतना अधिक अन्न देती हैं। और संभव है उनका अनुकरण करके वह भी कुछ-न-कुछ उन्नति के साधन सोचता। गर्ज़, शिक्षित हो जाने पर उसे ये कठिनाइयाँ न भोगनी पड़तीं। अक्सर देखा गया है कि ज़मींदार किसानों से रुपया तो पूरा ले लेते हैं किन्तु रसीद कम की देते हैं। ग़रीब अपढ़ किसान यही समझता है कि जितना रुपया उसने दिया है, उतने ही की रसीद उसे दी गई है। वह उसे सँभालकर घर में रख छोड़ता है। मियाद आने पर जब ज़मींदार नालिश कर देता है तो बेचारे किसान की आँखें खुलती हैं। फिर भी उसे रसीद का बल रहता है। किन्तु अदालतें तो महज़ क़ायदे-क़ानून पर चलने वाली हैं। उन्हें इस प्रकार की असलियतों से क्या मतलब। बेचारे किसान पर डिग्री हो जाती है और वह असमय ही पिस जाता है।

देश की उन्नति के लिये शिक्षा ही एक मूल मंत्र है। इसी का सहारा लेकर एक बार भारतवर्ष उन्नति के शिखर पर चढ़ चुका है और इसी के अभाव में आज हम इसकी पतितावस्था भी देख रहे हैं।

देहातों के स्कूलों का संबन्ध डिस्ट्रिक्ट बोर्डों से है। किन्तु वर्तमान डिस्ट्रिक्ट बोर्डों में इतनी धाँधागर्दी है कि अध्यापक

बहुत परेशान से रहते हैं। अमूमन ऐसा देखा जाता है कि लगातार महीनों की तनख्वाहें बक़ाया पड़ी रहती हैं। यह हम मानते हैं कि धीरे-धीरे यह बकाया रुपया अदाकर दिया जाता है किन्तु तनिक यह भी सोचना चाहिये कि १७ या १८ रुपया पाने वाले अध्यापक को तनख्वाह न मिलने पर किन कठिनाइयों का मुक़ाबला करना पड़ता होगा। ऐसी अवस्था में वह घरेलू चिंताओं में पड़ जाता है और नतीजा यह होता है कि शिक्षा-कार्य में शिथिलता आजाती है।

कहीं-कहीं ऐसा भी देखा जाता है कि १००या१५०छात्रों को पढ़ाने के लिये केवल दो अध्यापक नियुक्त हैं। यह एक मोटे ज्ञान की बात है कि ५० या ७५ विद्यार्थियों को एक व्यक्ति क्या शिक्षा दे सकता है।

स्कूलों की बहुत-सी इमारतें भी डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की अपनी इमारतें नहीं हैं। जहाँ बोर्ड की कोई इमारत स्कूल के लिये नहीं है, वहाँ किसी टूटे-फूटे कच्चे मकान में ही स्कूल रख दिया जाता है। ऐसे स्कूलों में बरसात और जाड़े में जो कष्ट होता है, वह लिखा नहीं जा सकता।

शिक्षा का अर्थ केवल अक्षरों के बोध करा देने तक ही नहीं सीमित रहता, बल्कि वास्तविक शिक्षा का अर्थ है, सभ्यता और शिष्टाचार का मनन। शिक्षा तो केवल बुनियाद मात्र है। उसके ऊपर खड़े होने वाली विशाल हवेली है, सभ्यता। हम जानते हैं कि प्राचीन युग में हमारे ग्रामों में शिक्षा-प्रचार अच्छा था और

इसी से हमारी सभ्यता भी आदर्श सभ्यता थी। आज वह जमाना बीते न जाने कितनी सदियाँ गुजर चुकीं। किन्तु फिर भी पठित समाज के मुँह से भारत की प्राचीन सभ्यता की वाह्-वाहियाँ निकल ही जाती हैं।

सब से उलझी हुई समस्या जो आज के वर्तमान नेता-समुदाय के सामने है, वह है मौजूदा ग्राम-शिक्षा की सुव्यवस्था। यद्यपि कांग्रेस-सरकार देहातों से अशिक्षा के दूर करने में सराहनीय प्रयत्न कर रही है किन्तु अभी तक इस ओर कोई विशेष सुधार नहीं हुआ। बच्चों की शिक्षा के अलावा किसानों को भी शिक्षित बनाने की बड़ी आवश्यकता है। गाँवों में रात्रि पाठशालाओं का काम जोरों से आरम्भ होना चाहिये। जहाँ रात्रि के अवकाश में किसान शिक्षा ग्रहण कर सकें।

गाँवों में पुस्तकालयों और वाचनालयों की भी बड़ी जरूरत है। इस ओर कांग्रेस-सरकार का ध्यान गया भी है और एक अच्छी रक़म इस विषय के लिये अलग निश्चित कर दी गई है। यह सब तो हुआ किन्तु बेहतर होता कि पहले रात्रि पाठशालाओं की समुचित व्यवस्था कर ली जाती, बाद में इस प्रकार के पुस्तकालयों और वाचनालयों में रुपया सर्फ़ किया जाता। पुस्तकालय व वाचनालय गाँवों में खुल अवश्य जायेंगे किन्तु इनसे केवल शिक्षित समुदाय ही लाभ उठा सकेगा। गरीब और अपढ़ किसान इसका उपयोग न कर सकेंगे।

भारतवर्ष एक बड़ी आबादी का देश है। इसका क्षेत्रफल भी

काफ़ी विस्तृत है। पूरे हिन्दोस्तान में सैकड़ों तरह की जातियाँ बसती हैं और उनकी भाषायें भी भिन्न-भिन्न हैं। किन्तु कोई भी जाति या कोई भी राष्ट्र तब तक उन्नति नहीं कर सकता जब तक कि उसकी राष्ट्र-भाषा एक न हो। राष्ट्र-भाषा एक होने से शिक्षा-प्रणाली में भी सुविधा होती है। आज यदि यू० पी० का हिन्दी पढ़ा आदमी मद्रास जाता है तो उसे अपने पेट भरने के लिये भोजन सामग्री ख़रीदने में भी बड़ी कठिनाइयाँ उठानी पड़ती हैं।

अंग्रेजी भाषा से हमारी राष्ट्र-भाषा का मतलब नहीं हल हो सकता क्योंकि केवल धनी समुदाय ही यह शिक्षा ग्रहण कर सकता है। अंग्रेजी स्कूलों, कालेजों और विश्वविद्यालयों की फ़ीसें इतनी अधिक हैं कि साधारण स्थिति के लोग अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त करने का साहस तक नहीं करते।

हिन्दी को राष्ट्र भाषा बनाने के लिये प्रयत्न हो रहे हैं और यदि कहीं ये प्रयत्न सफल हो गये तो शिक्षा-कार्य आसानी से चलाया जा सकेगा।

यदि सरकार शिक्षा-कार्य का भार बजाय डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के अपने हाथों में ले ले तो बड़ी सुविधा रहेगी। मौजूदा डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के मेंबरों में पार्टी बन्दी का ऐसा बुरा मर्ज़ लग गया है कि उन्हें इस उलझन से ही फ़ुर्सत नहीं मिलती। फिर भला वे ग्राम शिक्षा और उससे संबंध रखने वाली अन्य समस्याओं पर क्या विचार कर सकते हैं।

वर्तमान ग्राम-शिक्षा में उन्नति के लिए ऐसी समितियों की

आवश्यकता है जो देहाती नवयुवकों को सामाजिक आध्यात्मिक और शारीरिक उन्नति के लिए उचित बातें बताने में सहायता दें।

कोई भी काम सामूहिक रूप से करने के लिए शिक्षा की बड़ी सख्त जरूरत पड़ती है। आज आये दिन हमारे देहातों में जो प्रकार-प्रकार की कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं, वे केवल अज्ञान और अशिक्षा का ही फल है।

साहूकार, सरकार और कुछ अन्य धनी मानी व्यक्ति या अन्य संस्थायें, बच्चों की ही शिक्षा का प्रबन्ध कर रही हैं। किन्तु निरक्षर प्रौढ़ों को शिक्षा का कोई समुचित प्रबन्ध अबतक नहीं दिखाई पड़ा।

यद्यपि शिक्षा-कार्य कुछ बढ़ ही रही है, किन्तु फिर भी निरक्षरता बढ़ती जाती है। इसका कारण यह है कि किसानों के शिक्षा प्राप्त-शुदा लगभग ८० फीसदी बच्चे दस या बारह वर्षों के बाद निरक्षर हो जाते हैं। इसका मुख्य कारण तो यह है कि उन बच्चों की जो कुछ भी शिक्षा होती है, बहुत कम होती है। दूसरे, देहाती जीवन में उन्हें शिक्षा का किसी प्रकार संपर्क ही नहीं मिलता। इस प्रकार उनकी शिक्षा और अशिक्षा में क्या अंतर हुआ।

देहातों में प्रौढ़ों व बच्चों की शिक्षा अथवा ज्ञान के लिए यदि बाइस्कोपों की सहायता ली जाय तो बड़ा लाभ हो सकता है। पहली बात तो यह कि सिनेमा जैसी चीज ग्रामीणों के लिये एक नई और आश्चर्यजनक चीज होगी और उसमें जो भी विषय

प्रैक्टिकल रूप से समझाया जायगा, वह ग्रामीणों के हृदय में बैठ जाने वाली चीज़ होगी। इस प्रकार शिक्षा के साथ-साथ दिनभर की कड़ी मेहनत के बाद उन्हें आमोद-प्रमोद का भी अच्छा अवसर मिलेगा।

गन्दगी बीमारी की जड़ है। यदि हम बीमारी से बचना चाहें तो हमारे लिये यह आवश्यक हो जाता है कि हम गन्दगी से दूर रहें। मतलब यह नहीं कि हम क़ीमती कपड़े ही पहन कर सफ़ाई रखें, किन्तु कम-से-कम हम जो कपड़े पहनें, चाहे वह मोटे ही क्यों न हों, साफ़ हों। आज इस सम्बन्ध में ग्राम पाठशालाओं की अवस्था चिंताजनक है। देहाती स्कूलों के बच्चे अक्सर बहुत गन्दे रहते हैं। खड़िया, स्याही और कोयला उनके कपड़ों पर पुता रहता है। यह अध्यापकों का फ़र्ज़ है कि उनको ऐसा करने से रोकें।

स्वास्थ्य के विषय में भी अध्यापकों को विशेष ख्याल रखना चाहिये और ड्रिल आदि खेल-तमाशे नियमित रूप से कराना चाहिये। शिक्षा-विभाग यदि ग्राम-शिक्षा के साथ-साथ दस्तकारियाँ सिखाने का भी प्रबन्ध करे तो बड़ा अच्छा हो। हम यह मानते हैं कि शिक्षा-विभाग का ध्यान कुछ अर्से से इस ओर गया है। किन्तु सुतली कातना और बाग़बानी आदि सिखाना कोई विशेष महत्वपूर्ण बातें नहीं हैं। किसानों के लड़के शिक्षा समाप्त करके या शिक्षा के दौरान में ही ये बातें अपने घरों में आसानी से सीख लेते हैं। उन्हें तो इस प्रकार की दस्तकारियाँ

सीखना चाहिये जो उन्हें आगे हितकर सिद्ध हों और खेती के कामों से बचे हुये समय में वे उन दस्तकारियों की सहायता से कुछ कमा सकें ।

यदि केवल चरखे पर सूत कातना और उसे जुलाहों की तरह बुनना ही सिखाना शुरू कर दिया जाय तो किसान के हक़ में यह एक बड़ी महत्व-पूर्ण बात होगी। या उसके साथ ही साथ यदि बढ़ईगीरी भी सिखाई जाय तो वह भी विशेष सुविधा जनक होगा। इससे एक तो यह सुविधा होगी कि बोर्ड को फर्नीचर में रुपया बर्बाद न करना पड़ेगा। दूसरे आगे चलकर इस प्रकार का काम सीखे हुये बच्चे अपने घरेलू जीवन की जरूरियात भी हलकर सकेंगे।

सारांश यह कि शिक्षा की उन्नति के साथ-साथ हमारे देहातों की सामाजिक एवं व्यवसायिक उन्नति का भी भविष्य दिया हुआ है।

आज यदि गाँवों में शिक्षा का पूर्ण रूपेण प्रबंध हो जाय तो बेकारी और गरीबी की समस्या बहुत अंशों में हल हो सकती है। किन्तु शिक्षा से हमारा आशय वर्णिक- शिक्षा से नहीं । हम तो वर्णिक शिक्षा के साथ-साथ दस्तकारी की तरक्की देखना चाहते हैं और हम तभी उन्नति कर सकेंगे जब हमारे हाथों में दस्तकारियों के आशय होंगे। ऐसी दशा में हम बेकारी और गरीबी का मुकाबला सीने जोरी से कर सकेंगे और हमारे संघर्ष मय जीवन की समस्यायें उतनी जटिल न रह जाँयगी, जितनी कि वर्तमान युग में हैं।

देहातों के सुधार-कार्य में कांग्रेस का प्रयत्न

विश्व परिवर्तन शील है, यह परिवर्तन इतने महत्व-पूर्ण होते हैं कि इतिहासों के पृष्ठों पर आकर अमर हो जाते हैं। जिन राष्ट्रों में प्राचीन जातियों ने कभी अपने को उन्नति के शिखर पर पहुँचा रक्खा था, वे ही आज भूलुंठित होकर बर्बाद हो गईं। जिन हिन्दू और मुस्लिम बादशाहों के भ्रूकुटि कलाप पर दुनियाँ के राष्ट्र थर्रा उठते थे, आज उन्हीं के वंशज दर-दर ठोकरें खाते फिरते हैं और एक-एक दाने केलिये दूसरों के सामने हाथ फैलाते फिरते हैं। भारत के देहात भी जो कभी आदर्श देहात कहे जाते थे, आज बिदेशी सभ्यता के चक्कर में पिसकर मटिया मेट हो गये। अब उन देहातों पर दृष्टि डालते हैं तो वे देहात हमें रेगिस्तानी बीरान आबादियों से जंचते हैं। किन्तु सब दिन हमेशा एक से नहीं रहते। सुख के बाद दुख और दुख के बाद सुख देना ही शायद भगवान की नीति है। एक बकरी का बच्चा भी जब क़त्ल करने के लिये लाया जाता है तो बकरा न

हो सकने की धारणा पर भी वह अपने जीवन रक्षा के लिये छट-पटा कर छूटने के लिये असफल प्रयत्न करता है। फिर यहाँ तो ३३ करोड़ के एक बड़े जन समूह का प्रश्न था। आखिर देश के शिक्षित और सहृदय व्यक्तियों से इस प्रकार के जुल्म सहन न हो सके और अन्त में मजबूरन उन्हें अपने देहातों की रक्षा अपनी सभ्यता और मान मर्यादा के लिये सत्याग्रह आन्दोलन छेड़ना पड़ा।

सर सेकफ़न लपेट कर और शांति का दिव्य अस्त्र लेकर देश के प्रत्येक दीवाने मैदान में उतर पड़े। इन वीरों को जो-जो तक-लीफें उठानी पड़ीं, वे हमारे दिलों में नक़्श हैं। देश की आज़ादी के लिये इन्हें लड़ते देखकर हमारे वीर किसानों ने इनकी बड़ी मदद की। बंगाल में निलहे गोरे किसानों पर जो अत्याचार कर रहे थे, उन्हें महज़ पढ़ लेने मात्र से हम सिसक उठते हैं किन्तु सत्याग्रहियों ने वहाँ पर शान्ति युद्ध छेड़कर विजय पाई। इस विजय की भेंट स्वरूप कितने नवयुवकों ने जेल की कोठरियाँ आबाद कीं, कितनी सधवायें विधवा बनीं और कितनी मातायें निपूती हुईं; इसका हमारे पास कोई ठीक हिसाब नहीं है।

बारडोली सत्याग्रह में न जाने कितने गाँव जल कर स्वाहा हो गये। किसानों की खड़ी फ़सलें जला दी गईं। उन बेचारों के जानवर भी बेरहमी से छीने गये। ग़रीब किसानों ने जंगलों में रहकर और पेड़ों की छालें और पत्तियाँ खा खा कर, अपनी जीवन रक्षा की। अगर बदक़िस्मती से कोई किसान परिवार गाँवों

में मिल जाता तो ३६-३६ घंटे उनके दर्वाजे पेशावरी पठानों का पहरा रहता। इस प्रकार न जाने कितने परिवार एक-एक कतरे पानी के लिये तड़पकर मर गये। उन किसानों को अपनी आज़ादी और स्वाभिमान की लड़ाई लड़ने के लिये कांग्रेस ने काफी प्रोत्साहन दिया और इस लड़ाई का अन्त भी उज्वल ही रहा।

समय-समय पर कांग्रेस के सिपाहियों ने जेलें भी आबाद कीं, उन माताओं और बहिनों ने जिन्होंने कभी कार के नीचे पैर न रखा था, हाथ में राष्ट्रीय झंडा लिये हुये, जगह-जगह पिकेटिंग करना शुरू कर दिया और एक बड़ी संख्या में जेल भी गईं। कभी-कभी तो ऐसे मौक़े आगये जब जेलों में जगह तक न रह गई और मजबूरन गवर्नमेंट को कैम्प जेलों की स्थापना करनी पड़ी।

इन बलिदानों और त्यागों का नतीजा अन्त में उज्वल ही निकला और आज हम अपनी आँखों देखते हैं कि भारत के लगभग सात सूबों में एक प्रकार से कांग्रेस का राज्य है। जब इतनी मार-पीट और कठिनाइयों को सहकर के आज हमारे सामने यह सुख के दिन उपस्थित हुये हैं तो हम आशा ही नहीं रखते, बल्कि दृढ़ विश्वास रखते हैं कि एक-न-एक दिन हम ज़रूर आज़ाद होंगे।

कांग्रेस का पूरा इतिहास यदि हम लिखने बैठें तो एक बड़ा ग्रंथ तैयार हो सकता है इसलिये कांग्रेस का इतना ही थोड़ा-सा हाल देकर अब हम अपने मुख्य विषय पर आते हैं। क्योंकि इस परिच्छेद में सब से महत्वपूर्ण बात हमें यह बतानी है कि

कांग्रेस ने ग्राम-सुधार कार्य में क्या-क्या किया :

भारत के ग़रीब किसान ज़मींदारों के आर्थिक शिकंजों में इस क़दर जकड़े हुये थे कि फ़सल तैयार होने पर क़र्ज़ या लगान के रूप में उनका सब-कुछ सरमायेदारों की भेंट हो जाता था। नतीजा यह होता था कि किसान वर्ष भर आधे पेट रहता था। किसान अपने बच्चों की परवरिश करता था। ज़मीन ही एक मात्र उसकी पूंजी है किन्तु लगान अदा न कर सकने पर उसकी वह पूंजी भी बेदख़ल होकर ज़ब्त हो जाती थी। किसान के हक़ में सब से उचित व्यवस्था जो कांग्रेस सरकार ने की है, वह बक़ाया लगान और उससे सम्बन्ध रखने वाली बेदख़ली का मुल्तवी कर देना है। किसान को चाहे यह मुल्तवी शुदा बक़ाया लगान क्यों न भरना पड़े किन्तु फ़िलहाल उसके सर से एक बहुत बड़ा बोझ उतर गया। ज़मींदारों के अत्याचार भी किसानों के लिये असह्य थे, बल्कि अब अमानुषिकता से बहुत आगे बढ़ चुके थे। बेचारे किसानों को अपने खेतों का सोने का सा ताज छोड़कर ज़बरन उनकी बेगारें भूखे रहकर भुगतनी पड़ती थीं। और कहाँ तक कहा जाये, फ़सल तैयार होने पर फ़ी गोईं पीछे ५ सेर गुड़ १ या २ गट्ठर भूसा ढाई सेर सन ५ सेर ज्वार और न जाने क्या-क्या किसान को ज़मींदारों की भेंट करना पड़ता था। कहीं-कहीं होली, दशहरे पर ज़मींदार किसानों से नज़राना भी लेते थे। किन्तु कांग्रेस की छत्र छाया में ये सब बातें विलीयमान होगईं। अब किसान क़रीब-क़रीब सुख का अनुभव कर रहे हैं

और ज़मींदारों के प्रति उत्पन्न हुआ अब उनके दिलों से दूर होरहा है।

पुलिस के अत्याचारों ने भी देहाती जीवन में एक तहलका मचा दिया था। आये दिन ग़रीब किसान अपनी इज़्ज़त-आबरू के साथ-साथ अपने बर्तन-भांडे और जानवरों तक से हाथ धोने पड़ते थे। गाँवों में जाकर ज़बरदस्ती बिना पैसा दिये हुये गाड़ियों भूसा ले लेना और गाड़ियों लकड़ियाँ ले लेना पुलिस के लिये एक मामूली बात थी। चलते-फिरते ग़रीबों पर दर्जनों बेत बर्षा देना उनके आमोद की-सी बात थी झूठे मामले तैयार करके रुपये ऐंठ लेना उनकी आदत सी हो गई थी। असहाय किसान ये सब ज़्यादतियाँ सहकर आँसुओं के रूप में अपना कलेजा बहाया करते थे किन्तु काँग्रेस सरकार ने पुलिस का महकमा अपने हाथ में लेकर किसानों के प्रति बड़ा उपकार किया। पुलिस की जाँच करने के लिये एक अलग विभाग भी क़ायम किया गया जिसका उद्देश्य पुलिस से रिश्वतखोरी का नाश करने का है। जैसा देश वैसा भेष की कहावत के अनुसार इच्छा न होते हुये भी पुलिस को अपना रवैया बदलना पड़ा। आज हम देख रहे हैं कि मौजूदा पुलिस निहायत होशियारी और ईमानदारी से काम कर रही है। इतना होते हुये भी यदि पुलिस के किसी कर्मचारी ने बदनियती की तरफ़ क़दम बढ़ाया तो उसे उचित दंड दिया जाता है।

किसान के लिये यह सुविधा कोई मामूली सुविधा नहीं है। अभी तक किसान अपने को महज़ गुलामी का पुतला समझता

था किन्तु आज वह इस बात को अच्छी तरह महसूस करने लगा है कि दुनियाँ के तमाम इन्सानों की हस्ती की तरह उसकी भी हस्ती दुनियाँ में जबतक क़ायम है, तबतक सुख से क़ायम रहे। और उसकी मृत्यु भी जब कभी हो तब निहायत शान्ति और सुखपूर्वक हो अशिक्षा और अज्ञान के कारण हमारे देहातों की सभ्यता भी पयान कर चुकी थी और किसान महज़ गँवार के गँवार बन गये थे, किन्तु काँग्रेस ने गाँवों में सभायें कर के किसानों में वह जागृति फूँक दी कि हमें प्रत्येक गांव में राष्ट्रीय झंडा फहराता हुआ दिखाई देता है और बन्देमातरम् का गगन-भेदी स्वर भी सुनाई पड़ता है। आज आप गाँवों में जाइये, वहाँ के किसान आप से सभ्यतापूर्ण बात करेंगे। यदि आप कष्ट में हैं तो काँग्रेस कमेटियाँ आपकी सहायता करेंगी। यह काँग्रेस की ही ताक़त है जिसने इस थोड़े से अर्से में अपने प्राणों पर खेलकर देश में इतनी ज़बरदस्त तबदीली क़ायम कर दी। किसा दिल में काँग्रेस की यह छाप अमिट हो गई है और वे मौक़ा पड़ने पर अपनी रोटी की समस्या के लिये बड़ा से बड़ा त्याग और बलिदान कर सकते हैं।

हम यह पहिले किसी परिच्छेद में बतला चुके हैं कि गाँवों की बीमारी का प्रधान कारण वहाँ की गंदगी है। कांग्रेस का ध्यान इस ओर भी गया और वह आर्गनाइज़रों की नियुक्ति कर के इस गन्दगी को भी मिटा देना चाहती। गाँवों में गन्दगी फैलने वाले नाबदान और घूर ही मुख्य हैं। यह कार्मचारी इनकी

सफाई का विशेष ध्यान रखते हैं और घूर गाँवों के बाहर ही डलवाते हैं। गाँवों में अब पंचायतें भी क़ायम हो गई हैं जिनके चुनने का अधिकार गाँवों वालों का होता है। वे जिस को उपयुक्त समझते हैं उसी को चुन लेते हैं और इस प्रकार उन्हें मामूली झगड़ा झांसों के लिये अदालत में रुपया नहीं फूंकना पड़ता। उनकी पंचायतें गाँवों में ही ख़तम हो जाती हैं। गाँवों से अब पुलिस का सम्बन्ध भी कुछ कम होता जाता है क्यों कि पहिले की तरह मामूली सी बातों के लिये अब लोग थाने की तरफ नहीं दौड़ते। वे शान्ति पूर्वक कांग्रेस कमेटी में दरख्वास्त दे आते हैं और कांग्रेस अधिकारी दरख्वास्त की सच्ची-सच्ची और पूरी-पूरी जांच करके अपना फैसला दे देते हैं इस प्रकार देहातियों के पैसों की बचत होती है और वैमनुष्यता भी नहीं बढ़ने पाती।

अब भी जिन ग़रीब किसानों पर ज़मींदार लोग किसी प्रकार का मुक़दमा दायर करते हैं तो कांग्रेस उनकी मदद भी करती है ग़र्ज़ें कांग्रेस संस्था ग़रीबों की अपनी संस्था है। कांग्रेस की नींव ग्राम समस्या लेकर पड़ी है और इस ओर प्रयत्न शील होना ही उसका मुख्य उद्देश्य है।

हम मानते हैं कि देहातों की बस्तियाँ आज उजड़ खण्डहरों के रूप में रह गई हैं, किन्तु फिर भी तिरंगे झंडे उनकी रौनक़ बढ़ाये हुये हैं। अशिक्षित होने पर भी ग्रामीण काँग्रेस की सरल नीति के तत्व तक पहुँच गये हैं और अब उन्हें दृढ़ विश्वास है

कि इस संस्था द्वारा ही उनका उद्धार संभव है, काँग्रेस के आदेश उनके लिये पथ-प्रदर्शक का काम कर रहे हैं। वे किसान जिन्होंने अपने गाँवों से कभी बाहर क़दम न रक्खा था, आज "झंडा ऊँचा रहे हमारा" का महामंत्र फूँकते हुये शान्ति के साथ स्वराज्य शिखर की ओर बढ़ रहे हैं।

ग्रामीणों की अशिक्षा ही उनकी अवनति का कारण बन बैठी। अशिक्षित होने के कारण वे अपने मूल्य को न आंक सके और फल यह हुआ कि बेचारे सरमायेदारों के चंगुलों में बुरी तरह फँस गये। काँग्रेस ने इस ओर भी अपना रुख फिराया अब हम अपनी आँखों देखते हैं कि जगह जगह देहातों में पुस्तकालयों की स्थापना की जा रही है। रात्रि-पाठशालाओं का भी आयोजन हुआ है जिनमें दिन भर के काम से अवकाश पाकर किसान शिक्षा ग्रहण कर सकें।

निर्धन देहातियों के पीछे रिश्वत का रोग भी अब तक बुरी तरह पड़ा हुआ था। बेचारों को अवसर पड़ने पर अपने तन के कपड़े और खाने का अनाज तक बेचकर इस कर्ज़ रूपी रक़म को अदा करना पड़ता था। बड़े बड़े आफ़िसर तक इस बात को जानते थे कि भारत के देहातों में रिश्वत रूपी रोग फैल रहा है। किन्तु इसका कोई उचित प्रबंध अब तक न हो सका। काँग्रेस सरकार ने इस विषय पर बड़ी दूरदर्शिता से काम लिया और इसकी जाँच के लिये एक गुप्तचर विभाग भी क़ायम कर दिया फल यह हुआ कि पुलिस की वे बाज़ारें

और अदालत के वे कोर्टयार्ड्स जो रिश्वतखोरी के महापाप से बदनाम हो रहे थे आज पवित्र हो गये और असहाय ग्रामीणों का एक बड़ा संकट टल गया। इस उपकार के लिये भारत के ग्रामीण कांग्रेस के तब तक ऋणी रहेंगे जब तक कि कांग्रेस पवित्र कीर्ति इतिहास के स्वर्णिम-पृष्ठों पर अमर रहेगी।

अब तक किसानों ने भूखे और नंगे रह कर अपनी जिंदगियां क़ायम रक्खीं, किन्तु जुल्म की भी कोई सीमा होती है! अब उनमें इतनी शक्ति नहीं कि आगे भी वे इस प्रकार की ज़लील ज़िन्दगी बसर करें; इस प्रकार की कष्ट-प्रद जिंदगी से वे मौत को अच्छा समझते हैं। ख़ामोशी के पुतले किसान आज गुलामी की नींद से जग उठे हैं और दुनियाँ की आवाज़ के साथ साथ उनकी भी आवाज़ बुलन्द हो उठी है। सदियों से बुझी हुई स्वाधीनता की आग आज उनके पीड़ित दिलों में धधक उठी है और उसका बुझना अब असंभव सा दीख रहा है।

भारत के किसान यदि आज एक साथ अपने औज़ार ज़मीन पर फेंक दें और ख़मोशी अख्तियार कर लें तो दुनियां की आबादी का अधिकांश भाग एक एक दाने के लिये तरस कर मर जाय किन्तु फिर भी इन पीड़ित असहायों के प्रति सरमायेदारों के कानों में जूँ तक नहीं रेंगती।

हम मानते हैं कि दुनियां के पास धन है; किंतु वह धन भोजन का काम नहीं दे सकता। दुनियां को अपने धन के साथ साथ धन देने वाले उस प्राणी का भी ध्यान रखना चाहिये जो

अपना खून-पसीना एक करके भी उन्हें मन देता है। दुनियां के पैसे वाले यदि आज सेवा मिष्ठान्न खाने का इरादा करते हैं और ख़स और ज़मख़ पहिनना पसन्द करते हैं तो उन्हें अपने इन पोषकों की रूखी रोटी और मोटे मोटे कपड़े की व्यवस्था का भी ध्यान रखना चाहिये।

कोई भी राष्ट्र और कोई भी देश किसानों को रौंद कर न आगे बढ़ सका है और न बढ़ सकेगा। इसी नीति को लेकर आज काँग्रेस आगे बढ़ रही है। उसकी सेना के मुख्य अंग वीर किसान ही हैं और वह जी तोड़ कर इनकी बहबूदी के लिये उपाय कर रही है। अब तक कांग्रेस ने जो कुछ भी किसानों के साथ किया उससे वे संतुष्ट हैं और उनकी आशा है कि आगे उन्हें इस संस्था द्वारा अत्यधिक सुविधायें मिलेंगी।

देहातों में पञ्चायत का कार्य

पञ्चायतों की नींव भारतवर्ष में उस युग में पड़ी थी जिस युग को इतिहासकार असभ्यता का युग कहते हैं। हो सकता है कि उस युग में आज की तरह के तार्किक या दार्शनिक न हों किंतु फिर भी पञ्चायत प्रथा चला कर उस काल के आदिम निवासियों ने अपनी निज की सभ्यता का एक उच्चतम आदर्श स्थापित कर दिया जिसे वर्तमान सभ्य-समाज भी अपनाये हुये है और उसी के बल पर आज नई नई योजनायें तैय्यार हो रही हैं।

मानव जीवन के संघर्षों का अन्त क्रोध है। इस क्रोध का प्रादुर्भाव मनुष्य में उस समय से है जब से कि सृष्टि की शुरुआत हुई। क्रोध के परिणाम स्वरूप उपस्थित हुई भीषण परिस्थितियों को सुलझाने के लिये ही पञ्चायत की नींव पड़ी। माना कि आदि निवासियों में सभ्यता और ज्ञान प्रचुर मात्रा में न थे। किन्तु फिर भी उनमें इतना ज्ञान अवश्य था कि अपने फिरके के मुखिया के निर्णय को वे ब्रह्म वाक्य मानते थे।

युग बीता और धीरे-धीरे मनुष्यों में सभ्यता और संस्कृति का समावेश हुआ। लोगों ने जंगलों को साफ करके झोपड़ों में रहना शुरू किया। ये झोपड़े आगे चलकर कच्चे मकानों में तब्दील हो गये और कच्चे मकानों के समूहों ने आगे चलकर गाँवों का रूप धारण कर लिया। एक शक्तिशाली एवं प्रभावशाली व्यक्ति गाँव का मुखिया चुन लिया जाता था और गाँव के हर प्रकार के झगड़ों के निपटारे का उत्तरदायित्व मुखिया ही पर होता था। मुखिया अपनी सहायता के लिए गाँव से कुछ अन्य प्रमुख व्यक्तियों को चुन लेता था जो पञ्च कहलाते थे और फ़ैसला करने में उसकी मदद करते थे।

ज्यों-ज्यों सभ्यता का विकास हुआ, त्यों-त्यों साम्राज्य लोलुपता की पैशाचिक भूख भी बढ़ी और फल यह हुआ कि शक्तिशाली फ़िरकों ने निर्बल फ़िरकों पर आक्रमण करके उन्हें अपने आधीन कर लिया और उन पर शासक बन बैठे। शक्ति-शाली विजेताओं के मुखिया ही आगे चलकर राजा बन बैठे।

अब ग्रामीण पञ्चायतों के पेचीले मामले राज दरबार में भी जाने लगे किंतु राजा भी उनका निर्णय एक खास पञ्चायत की सहायता ही से करता था।

हम इतिहासों में देखते हैं कि हिंदुओं के स्वर्ण युग से लेकर उनके पतन तक और मुसलमानों की विजय से लेकर पराजय तक पंचायतों का वही अस्तित्व रहा जो होना चाहिये। न्याय, न्याय के रूप में किया जाता था। पक्षपात करके पञ्चों या सर-

पञ्चों ने कभी ऐसे मौके नहीं उपस्थित होने दिया जिससे पंचायतों के सिर कलंक का टीका लगे।

ब्रिटिश काल में हिन्दोस्तान नये सांचे में ढाला गया। इसकी प्राचीन सभ्यता एवं संस्कृतियों का सर्वनाश हुआ, मिथ्याडम्बरी नवीन सभ्यता का श्री गणेश हुआ। विद्वेष और फूट की अग्नि जगह जगह भड़क उठी जिसके फल स्वरूप जगह जगह विशाल गगन स्पर्शी अट्टालिकाओं के रूप में "न्यायालयों" की नींव पड़ी। न्याय के नाम का डंका पिटा और तमाशे शुरू हुये। जन साधारण ने अपनी प्राचीन तम पञ्चायत पद्धति को ठुकराना आरंभ किया और अदालतों की शरण ली क्योंकि वहां का न्याय न्याय माना जाता है और बाक़ी न्याय शायद झूठा।

कॉंग्रेस का ज़माना आया। एक नई उमंग एक नया उत्साह नसे नसे में भर गया और कोने कोने से "इन्क़लाब ज़िंदाबाद" का भीम गर्जन सुनाई देने लगा। इस आन्दोलन में क्या मुसीबतें झेलनी पड़ीं, यह सबको भली भाँति ज्ञात है क्योंकि ये सब तो अभी कल की बातें हैं। देश प्रेम में दीवाने भारतीयों ने जिस अपूर्व त्याग और सहनशीलता का परिचय दिया उससे नौकरशाही तक थर्रा उठी और उसे अपने हाथों कॉंग्रेस का मार्ग प्रशस्त करना पड़ा। ज्यों ज्यों कॉंग्रेस को अधिकार मिलने लगे त्यों त्यों अपनी दुविधाओं का भी ख्याल कांग्रेस लीडरों में बढ़ा और उन्होंने महसूस किया कि ग्रामीण-पञ्चायतें ही गावों के लिये हितकर हैं। ग्रामीण भूखे नंगे रहकर भी अदालती कोर्टफीस

नहीं चुका पाते और इसलिये वे उचित न्याय के भागी नहीं हो पाते। खैर, वाह वाही लूटने के लिये सरकार ने अच्छा मौक़ा देखा और तहसीलदार या अन्य अफ़सरों ने अपने कर्मचारियों की सहायता से कांग्रेस योजना की नक़ल पर देहातों में पञ्चायतें क़ायम कीं और ग़लत फ़हमी फैलानी शुरू की। जनता को कहीं कहीं भ्रम में डालकर इन लोगों ने उसे अपने पक्ष में भी कर लिया किन्तु असत्यता दो दिन ठहरने की चीज़ है। आख़िर इन अफ़सरों द्वारा बनाये गये ज़मींदाराना तबियत के पञ्च अत्याचार करने लगे और जनता को इससे बड़ा असंतोष हुआ।

काँग्रेस ने जनता के इस असंतोष को अच्छी तरह महसूस किया और प्राचीन युग की पञ्चायतों का पुनिर्माण किया। देहातों में काँग्रेस के ट्रेनिंग अफ़सरों ने दौरे किये और गाँव गाँव में पञ्चायतें क़ायम कीं। गाँवों की आबादी के लिहाज़ से पंचों की संख्या निर्धारित हुई और उन्हीं पंचों में से एक व्यक्ति सरपंच भी चुना गया। पंचायत कमेटियों को उनके अधिकार भी सूक्ष्म रूप में समझाये गये, जिससे उन्हें फ़ैसला करने में कोई सवालात न उपस्थित हों। इस प्रकार पंचायतों ने काम करना शुरू किया।

मेरा जहाँ तक का अनुभव है और मैं जिन जिन प्रान्तों के व्यक्तियों से मिला उन्होंने इन पंचायतों के खिलाफ़ भी घोर असंतोष प्रकट किया। उन लोगों का कथन किन्हीं अंशों में मुझे सत्य भी मालूम हुआ। बात वास्तव में यह हुई कि पंचायतें चुनने

का अधिकार ग्रामीणों को ही दिया गया। फल यह हुआ कि ग्रामीणों ने गाँव के प्रभावशाली एवं सरमायेदारों के खिलाफ़ सर उठाने का साहस न किया और किन्हीं किन्हीं गाँवों में वही रक्त शोषक लोग ही पंचों और सरपंचों की जगह विराजमान हो गये जिनके हाथों पड़कर अभी तक किसान जैसे प्राणी नष्ट होते रहे हैं और जिनके द्वारा भविष्य में भी किसानों के अहित होने की सम्भावना है।

संसार की गति विधि के साथ ज़मींदारों और सरमायेदार ने भी अपना रुख पल्टा और पिछले वर्ष एवं इस वर्ष के चुनाव में ज़मींदारों और सरमायेदारों ने भी कांग्रेस की मेम्बरी में अपना नाम दिया। क़ायदा यह था कि पंचायतों का पदाधिकारी वही व्यक्ति हो सकेगा जो कांग्रेस के मेम्बर होंगे। ज़मींदारों ने नई चालाकी अख्तियार करके अपना नाम कांग्रेस की मेंबरी में दर्ज कराया और इन पंचायतों में ज़्यादातर अपना रोब गांठ बैठे। कांग्रेस, क़ानूनों पर चलने वाली संस्था है, वह उनके इस प्रकार के पद-ग्रहण को इन्कार न कर सकी और फल यह हुआ कि अनाचार का पुनः दौर दौरा हुआ और कहीं-कहीं पर इसी बिना पर कांग्रेस कमेटियाँ बदनाम भी होने लगीं।

क्या ही अच्छा होता यदि कांग्रेस नेता इस अहम मसले पर अमल करने के पेश्तर भली प्रकार विचार लेते। बजाय ग्रामीण मेम्बरों के यदि पंचायतें चुनने का अधिकार कांग्रेस अपने [illegible] पर रखती तो विशेष सुविधा होती और जनता

को इस प्रकार की पंचायतों के खिलाफ़ किसी भी प्रकार की आवाज़ उठाने का भी मौक़ा न मिलता। दीन-हीन ग्रामीणों की ये अवस्थायें जो उन्हें इस प्रकार के पञ्चों और सरपंचों की दुर-काल से होती है।

पंचायतें ग्रामीण संस्थायें होते हुये भी एक प्रकार से अदालतों की प्रति रूप हैं और पंच या सरपंच फ़ैसलों के सिलसिलों में वही अस्तित्व रखते हैं जो एक उनका न्यायाधीश। इन पंचों और सरपंचों को अपनी जिम्मेदारी व न्याय का ध्यान करके वही काम करना चाहिये जिससे किसी प्रकार भी न्याय का खून न हो सके और इस प्रकार न्याय निर्णय देने वाली हमारी ये ग्रामीण पंचायतें बदनाम न हो सकें।

मुझे मौजूदा ग्रामीण-पंचायतों से कोई निजी असंतोष नहीं है न मैं ये बातें लिखकर इस योजना पर कोई टिप्पणी ही करना चाहता हूँ, चूँकि काँग्रेस जन-साधारण की संस्था है और जन-साधारण का सहयोग ही उसकी मुख्य नीति है इसलिये जन-साधारण की यह शिकायतें मुझे लिखनी पड़ीं।

संभव है काँग्रेस सरकार निकट भविष्य में इन पंचायत कमेटियों की जांच के लिये भी कोई उचित व्यवस्था करे और इस संकट को दूर करने का शीघ्र ही प्रयत्न करे। ऐसा हो जाय कि पञ्चायतों का निर्माण बड़ी सावधानी से किया जाय और उसके अधिकारी वही हों जो निष्पक्ष हों और साथ ही साथ न्याय प्रिय भी हों। यद्यपि इस प्रकार की योजना पर अमल करके

काँग्रेस ने ग्रामीणों के साथ बड़ा उपकार किया है फिर भी यदि इसमें कुछ संशोधन हो जाय तो बहुत ही अच्छा है।

कहावत है कि एक मछली सारे तालाब को गन्दा कर देती है किन्तु हमें विचारना चाहिये कि क्या वास्तव में सब पानी गन्दा हो जाता है। इसी प्रकार ग्रामीण पञ्चायतों का भी विषय है, हो सकता है और बहुत सम्भव है कि जिले पीछे एक आध उदाहरण ऐसे हों जिनकी वजह से पूरे जिले की ग्रामीण-पञ्चायतें बदनाम हों, किन्तु उन पञ्चायतों का सुधार उसी दशा में हो सकता है जब समस्त व्यवस्था में रद्दो बदल हो।

वर्तमान ग्रामीण पंचायतें फिर भी ग्रामीणों के लिये बहुत कुछ कर रही हैं। छोटे मोटे घरेलू और गाँव संबंधी तमाम झगड़े इन्हीं पञ्चायतों में खतम कर दिये जाते हैं।

हमें पूर्ण आशा है कि आगामी ग्रामीण पञ्चायतों के चुनाव में जनता को शायद असन्तोष का अवसर न आवे और पंचायती कार्य में और भी सुधार हो जाँय। काँग्रेस सरकार पंचायतों को कुछ विशेष अधिकार देने की भी व्यवस्था करेगी।

गाँवों के निवासी समय-समय पर हमें मिलते हैं और उनसे जो बातें हुई हैं उन्हीं को सामने रखकर, हमने यहाँ पर अपना असन्तोष प्रकट किया है, किंतु अंत में हम अपने ग्राम-निवासियों से प्रार्थना करना चाहते हैं कि वे कुछ धैर्य से काम लें, प्रारंभिक अवस्था है, आगे चलकर ये सभी बातें बदल जाँयगी और पंचायत का काम उपयोगी रूप में चलने लगेगा। जब तक ऐसा अवसर

आवे, तब तक हम लोगों को उनकी व्यवस्था का प्रयत्न सोचते रहना चाहिए। हमारे देश में पंचायतों का काम प्राचीन काल से चला आ रहा है, यह ठीक उसी प्रकार चलेगा और हमारे गाँवों को हरा-भरा तथा निहाल बनावेगा, ऐसी आशा है। ईश्वर हमारी कॉंग्रेस के प्रयत्न को सफल बनावे

मज़दूर और किसान

मज़दूर और किसान

आज भारत में जो अवस्था किसानों की है उससे मिलती-जुलती ही या उससे भी बदतर हालत मज़दूरों की है। जिस प्रकार आज का किसान रोटी और कपड़े की विकट समस्या का सामना कर रहा है उसी प्रकार आज के मज़दूर भी रोज़ी और रोटी की तलाश में दर दर ठोकरें खाते फिरते हैं। किसान के पास फ़सल की शेष बचत कम से कम इतनी तो हो ही जाती है कि जिससे वह कुछ दिन तक अपना निर्वाह कर सकता है, किंतु मज़दूरों का फ़िरका एक ऐसा फ़िरका है जिसे रोटी के टुकड़े के लिये रोज़ाना मेहनत की ज़रूरत पड़ती है। बदक़िस्मती से यदि कोई मज़दूर कड़ी मेहनत करने के कारण बीमार पड़ गया तो बेचारे के घर में तवा तक नहीं गरम होता। सरमायेदार ज़रूरत पड़ने पर एक किसान को भले ही कर्ज़ दे दें क्योंकि उन्हें उससे रुपया वापस होने की संभावना रहती है किन्तु एक ग़रीब मजदूर को ऐसे अवसरों पर छोटी छोटी रक़में तक कर्ज़ में नहीं मिलतीं और वह खून का घूँट पीकर सब्र कर लेता है।

आज दुनियाँ के अन्य राष्ट्रों और देशों में मज़दूरों के झंडे बुलन्दी पर हैं। दुनियाँ आज हथौड़े और हँसिया युक्त लाल झंडे से थर्रा उठती है; किन्तु हमें देखना है कि इस प्रकार के लाल

झंडे ने भारत पर क्या प्रभाव डाला और उससे मजदूरों को क्या लाभ हुआ।

हम शहर के उन मज़दूरों की बात नहीं कहते जो मिलों व अन्य विभागों में काम करते हैं बल्कि यहाँ हम उन बेकस मज़-दूरों का ज़िक्र कर रहे हैं जो देहात की वीरान झोपड़ियों में अपनी ज़िंदगी बिता रहे हैं—यहाँ हम उन मजदूरों की बात कह रहे हैं जो छै-छै और आठ-आठ पैसों में सुबह से लेकर सूर्यास्त तक भूखे रहकर मजदूरी करते हैं।

अनाज और और अन्य बाज़ारी चीज़ों के भाव बढ़े हुये हैं ऐसी अवस्था में छै पैसे और आठ पैसे पाने वाला श्रमिक किस प्रकार अपने परिवार का पालन कर सकता है। खाने के साथ-साथ तन की आबरू ढाँकने के लिये दुनियाँ के प्रत्येक व्यक्ति को कपड़े की भी आवश्यकता पड़ती है। बेचारा मजदूर खाने भर को ही नहीं कमा सकता तो कपड़े कहाँ से पहिने। फल यह होता है कि जाड़े की कड़ाके की सर्दियों में बेचारा मजदूर ठिठुरता हुआ तन पर फटे चीथड़े लपेटे भिखारियों का सा वेष बनाकर काम पर हाज़िर होता है और दिन भर का हारा थका शाम को जानवरों की तरह पुआल की साथरी में जाकर सो जाता है।

तिथि-त्योहार होते हैं, दुनियाँ उनके उपलक्षों में उत्सव मनाती है। तरह-तरह के सुस्वादु पकवान बनते हैं और उस दिन लोग अपने-अपने कामों से अवकाश ग्रहण करके विश्राम मनाते हैं; किन्तु क्या कभी इन उत्सव कारियों ने उस मजदूर का भी ध्यान

किया है जो उत्सव के दिन भी पापी पेट की ज्वाला को बुझाने के लिये उत्सव का मोह संवरण करके एकाकी दूसरों की मज़दूरी किया करता है ? शाम को घर आकर रूखा-सूखा जो मिला उसे ही खाकर अपनी क़िस्मत को दो बूंद आंसुओं का अर्घ्य देकर सो जाता है। सुबह से लेकर शाम तक कड़ी मेहनत करना ही उसके जीवन का मुख्य उद्देश्य है और वह आजीवन इसी उद्देश्य की पूर्ति किया करता है। शक्तियाँ क्षीण हो जाने पर एक दिन कीड़े मकोड़ों की सी मौत मर जाता है और वे कफ़न श्मशान तक पहुँच कर सदा के लिये विलीयमान हो जाता है ।

धनी देशों के मज़दूरों की भी एक दिन यही अवस्था थी किंतु वे धनी देश के मज़दूर थे, उनके पास इतना बल था कि वे सफल हड़तालें कर सकें और हड़तालों के बूते पर ही उन्होंने विजय पाई। भारतीय ग्रामीण मज़दूरों के पास इतने साधन नहीं कि वे किसी भी प्रकार का विद्रोह खड़ा कर सकें और बेचारे तरह तरह के संकट सहते हुये भी मौनता के प्रतिरूप बने हुये हैं।

इतना सब होने पर मज़दूरों के लिये जो सबसे बड़ी कठिनाई है वह है काम का न मिलना, यदि बराबर काम मिलता जाय तो भी कुछ तकलीफ़ें दूर हो सकती हैं। इस विषय में जब तक कोई नयी योजना या नया आन्दोलन न होगा तब तक किसी सुधार की संभावना नहीं।

भारत का मज़दूर आन्दोलन अभी तक शहरों का ही आन्दोलन है। इस आन्दोलन से शहर के मज़दूरों की अवस्था में

सुधार भी हुये हैं और धीरे-धीरे अन्य सुविधायें भी मिल रही हैं आन्दोलन के प्रति मजदूरों का विश्वास ही इसकी सफलता का राज़ है। हम देखते हैं कि मिलों में अब वह तानाशाही नहीं रही जो कुछ वर्षों पूर्व थी। मजदूरों की तनख्वाह की कटौती का भी प्रश्न क़रीब-क़रीब हल सा ही हो गया है। अब बात बात में उनको तनख्वाह काट लेने की धमकियाँ नहीं दी जातीं। तनख्वाहों में भी कुछ वृद्धि हुई है।

इस आन्दोलन का देहातों में केवल इतना प्रभाव पड़ा कि ग्रामीण मजदूरों की एक न्यून संख्या शहरों में आबाद हो गई और वे मजदूर अपनी जीविकोपार्जन वहीं करने लगे। यह सब हुआ किन्तु इससे ग्रामीण मजदूरों को कोई समुचित लाभ न हो सका। यह हम मानते हैं कि मजदूर आन्दोलन शहरों से उठा है और एक न एक दिन इस दल का बिगुल देहातों में भी बजेगा किन्तु देहाती मजदूरों की दशा देखते हुये कहना पड़ता है कि इसमें जितनी ही जल्दी की जाय उतनी ही थोड़ी है वरना "बाद मुर्दन के मेरे उनका पयाम आया तो क्या"।

ग्रामीण मजदूरों को सुखी रखने और उन्हें पापी पेट की पीड़ा से छुड़ाने के लिये यह नितान्त आवश्यक है कि उनकी मजदूरियां बढ़ाई जांय, साथ ही उनके प्रति किये जाने वाले व्यवहारों में भी सुधार होने की बड़ी आवश्यकता है। दुनियां से शायद अब गुलामी की प्रथा उठ चुकी है, ऐसा कहा जाता है किन्तु देहाती मजदूर आज भी गुलामों का सा ही जीवन व्यतीत

करते हैं। सुबह से शाम तक परिश्रम करने पर भी आये दिन उन पर फटकारें पड़ती रहती हैं। शहर में काम करने वाले मज़दूरों के टाइम का हिसाब होता है किंतु ग्रामीण मज़दूर के लिये इस प्रकार के समय का कोई स्थान नहीं। सुबह से लेकर शाम तक तो उन्हें काम करना ही पड़ता है इसके अलावा काम पड़ जाने पर उन्हें रात में भी मालिकों की खिदमत करनी पड़ती है।

कॉंग्रेस सरकार का ध्यान इस ओर भी है और बहुत संभावना है कि निकट भविष्य में ही मज़दूरों की दयनीय अवस्था पर भी कुछ किया जाय। किसानों की अवस्था पर तो कांग्रेस ने काफ़ी प्रयत्न किये और उसके प्रयत्न पूर्ण रूपेण सफल भी हुये; किंतु मज़दूरों की समस्या का प्रश्न अब भी शेष है।

भारत जैसे श्रमिक देश में मज़दूर और किसान ही ऐसे हैं जिन पर देश की उन्नति और अवनति का उत्तर दायित्व है; किंतु वे अपने इस उत्तरदायित्व को तभी तक निभा सकते हैं जब तक उनकी जीवन समस्या के साथ न्याय का बर्ताव किया जाय।

आज के मज़दूर अपनी आंखों देख रहे हैं कि किस प्रकार कॉंग्रेस ने मोर्चा लेकर किसानों के अधिकारों के लिये लड़ाई छेड़ी वे यह भी देख रहे हैं कि इस लड़ाई में उन्हें कितनी सफ़लता मिली। इसी आशा और इसी विश्वास पर आज मज़दूर भी चुपचाप बैठे उस दिन की राह देख रहे हैं जब उनके भाग्य का भी सितारा चमकेगा और उनके दुखों का भी अन्त होगा।

भारत के बड़े-बड़े शहरों में रहनेवाले मजदूरों की हालतों में

बड़ा अंतर पड़ गया है। वे आज दुखी ज़रूर हैं, लेकिन अपने दुखों का कारण अपना भाग्य नहीं, बल्कि अपनी ही कमी समझते हैं, वे इस कमी को दूर कर रहे हैं और अपने दुखों को दूर करने के लिए संगठित हो रहे हैं, हमारे देहातों के लिए यही भविष्य का आदर्श है।

उसका भविष्य

स्त्री-जीवन और उसका भविष्य

इस परिच्छेद में हम ग्रामीण नारी-जीवन और तत्सम्बन्धी दैनिक समस्याओं का विश्लेषण करेंगे। आगे चल कर इसी परिच्छेद में हमें यह भी बताना है कि ग्रामीण नारी-जीवन की उन्नति के लिये हमें किन-किन अवलम्बों का सहारा लेना चाहिये और मौजूदा ज़माने में उनके प्रति हम या उनसे सम्बन्ध रखने वाले ग्रामीण क्या और कहाँ तक कर रहे हैं।

"नारियाँ समाज का मुख्य अङ्ग हैं" ऐसा विद्वानों का मत है; किंतु हमारा बर्तमान समाज उनसे इतना उदासीन है कि वे बेचारी बीसवीं सदी के इस उन्नति-शील युग में भी कूप-मंडूक बनी हुई हैं। इसमें न तो नारियों का ही दोष है और न समाज का। यद्यपि समाज में सुधारकों ने आधुनिकता का महामंत्र फूँक दिया है किंतु फिर भी दक़ियानूसियों का एक ज़बर्दस्त फ़िरका उसे पुरानी रूढ़ियों और संस्कृतियों से इस प्रकार जकड़े हुये है कि यही रूढ़ियाँ समाज के विकास की बाधक हैं।

पाश्चात्य देशों में नारी का वही महत्व है, उसका वही अधिकार है जो एक पुरुष का और वहाँ के समाज में नारियाँ वही पार्ट अदा कर रही हैं जो एक पुरुष। हम यह मानते हैं कि स्त्री-समाज में इधर थोड़े दिनों से हमारे देश में भी जागृति उत्पन्न हुई है

किन्तु उसकी सीमा केवल शहरों तक ही है, वह भी पूर्ण रूपेण नहीं। भारत की अधिकांश आबादी देहातों में विभाजित है, इस लिये जब तक ग्रामीण नारी जीवन पर सुधारकों की दृष्टि न जायगी तब तक वहाँ की अवस्था दिन बदिन खराब ही होती जायगी और शायद आगे चल कर उसका सुधरना असम्भव न नहीं, कठिन हो जाय।

वर्तमान ग्रामीण नारी-समुदाय में अशिक्षा बुरी तरह फैल हुई है। ढूँढ़ने से भी गाँव पीछे दस-पांच पढ़ी-लिखी औरतें न मिलेंगी, जो हैं भी उनकी शिक्षा इतनी कम है कि महज़ टेढ़े-मेढ़े अक्षरों में पत्रादिक लिख लेने के और उन्हें कुछ नहीं आता फिर उनमें क्षमता कहाँ से आवे कि ग्रन्थावलोकन करके वे अपना सुधार कर सकें। इसमें उनका कोई दोष नहीं, हम स्वयं इतने विचारशील नहीं हैं कि उन्हें ऊँची शिक्षा दें।

मध्यम श्रेणी की ग्रामीण नारियों का अधिकतर जीवन परदे में बीतता है। बाहरी दुनियाँ में क्या हो रहा है, जर्मन और जापान क्या बला है, इसका उन्हें ज्ञान नहीं। उनका ज्ञान तो घरेलू मोटे मोटे कामों तक ही सीमित है। फ़ुरसत के समय में पड़ कर सोना या अपने अतीत जीवन की आलोचनायें परिवार की स्त्रियों के साथ करना, यही उनके दैनिक जीवन की दिनचर्या है

नीची जाति की स्त्रियों का जीवन और भी कारुणिक है। किसानों की स्त्रियाँ दिन भर अपने परिवार वालों के साथ कड़ी धूप और सर्दी में खेतों में काम किया करती हैं और मजदूरों की

स्त्रियाँ सुबह से लेकर शाम तक दूसरे की मजदूरी करके अपने सारी जीवन पर रोया करती हैं। तन ढँकने को उनके पास पूर्ण वस्त्र नहीं, फिर भी पापी पेट की ज्वाला शाँत करने के लिये बेचारी अर्द्ध नग्न, चीथड़ों में अपनी आबरू ढाँके परिश्रम किया करती हैं। उन जैसी ग्रामीण स्त्रियाँ भी कभी सुख के दिन देखेंगी यह उनकी कल्पना से बहुत आगे की बात है। देहातों में मजदूरिय इतनी कम हैं कि केवल पतियों की कमाई पर परिवार का गुजार नहीं चल सकता और इसीलिये उन बेचारियों को भी अपने पतियों के साथ कंधा भिड़ाकर कड़ा परिश्रम करना पड़ता है। कड़ाके की सर्दियों और सिट्ठत की गर्मियों में भी उनके प्राण-प्रिय बच्चे उनसे दूर खेत की मेंड़ों पर पड़े सिसका करते हैं किंतु उन्हें इतना अवकाश नहीं कि उनके कंठ में दो बूँदे दूध की डाल सकें। उनका सतीत्व, उनकी इज्जत और उनकी आबरू सब कुछ मजदूरी है।

बच्चों का भविष्य माताओं की शिक्षा पर ही निर्भर रहा करता है; किन्तु उचित शिक्षा न होने के कारण ग्रामीण नारियाँ अपनी सन्तानों को वही शिक्षा देती हैं जो उन तक महदूद है यानी एक किसान की स्त्री बच्चे को एक किसान के सिवा और कुछ नहीं बना सकती इसी तरह एक मजदूर-नारी अपने बच्चे को आगे चलकर मजदूर ही बना सकती है। हाँ, यह बात अवश्य है कि ये भोली ग्रामीण नारियाँ अपनी संतानों को चोरी आदि बुरे कर्म करने से रोकती हैं इसका कारण यह भी हो सकता है कि भविष्य

में जेल का भय ही उन्हें ऐसा करने को विवश करता हो। खैर, फिर भी वे सफल मातायें नहीं हो पातीं। उनका दाम्पत्य-जीवन भी बड़ा ही रहस्य मय होता है। यद्यपि दाम्पत्य का अर्थ स्त्री और पुरुष का एक सूत्र में बँधना लगाया जाता है किंतु फिर भी ग्रामीण दंपति अलग अलग से ही दिखाई पड़ेंगे, चाहे वास्तिव-कता ऐसी भले ही न हो। पत्नी पति का नाम लेना घोर पातक समझती है। पति उससे बोलना शायद अपनी मर्यादा से परे समझता है।

उचित धात्री-शिक्षा न मिल सकने के कारण आये दिन जो बच्चों की मौतें हो रही हैं उनका कोई हिसाब नहीं। प्राचीन पद्धति को बिगाड़ कर अब आडम्बर मात्र कर दिया गया है और इसी-लिये शौर-गृह में बच्चे और माता की जो अवस्था होती है उसकी निन्दा और उपहास दूसरे देश वाले भी करते हैं। माताओं में भूतादिकों का इतना मिथ्या आतंक छाया हुआ है कि वे उससे बड़ी बड़ी हानियां उठा जाती हैं। बच्चे के बीमार होने पर ग्रामीण मातायें औषधि सेवन करा कर उसकी उचित परिचर्या न करके जादू टोनों का सहारा लेती हैं और बेचारे अबोध शिशु, उचित परिचर्या न पा सकने के कारण असमय ही मौत के शिकार हो जाते हैं। इस प्रकार यदि एक एक बात लिखो जाय तो पूरी पुस्तक इसी परिच्छेद में समाप्त हो जाय। अब हमें देखना है कि ये त्रुटियाँ किस प्रकार दूर की जा सकती हैं।

पहिली बात जिसकी ग्रामीण स्त्रियों को अत्यधिक जरूरत

है, वह है शिक्षा। गाँवों में बालकों के पढ़ाने की व्यवस्था तो क़रीब-क़रीब संतोष जनक है किन्तु कन्या पाठशालाओं की कमी के कारण स्त्री शिक्षा नहीं हो पाती। सरकार यदि इस ओर अत्यधिक प्रयत्न शील हो जाय तो बड़ा उपकार हो। इस प्रकार कन्या पाठशालाओं में ग्रामीण स्त्रियों और बालिकाओं को पठन-पाठन के सिवा सिलाई, धात्री शिक्षा, पाक शिक्षा आदि भी शिक्षायें दी जांय और धीरे धीरे पर्दा प्रणाली का अन्त किया जाय जिससे ग्रामीण नारियाँ भी आन्दोलनों में भाग ले सकें और अपने अधिकारों के लिये जनता के सामने आवाज़ उठा सकें।

दूसरी बात हमारे सामने छोटी जाति की औरतों की है उनके कष्ट तभी दूर होसकते हैं जब देहाती मजदूरों की मजदूरियाँ बढ़ाई जांय। नतीजा इसका यह होगा जब केवल मजदूर ही अपने परिवार के भरण-पोषण के लिये कमा सकेंगे तो उनकी स्त्रियों को इस मेहनत से छुट्टी मिल जायगी और उस छुट्टी के समय में वे अन्य उद्योगों में हाथ लगावेंगी जिससे ग्रामीण उद्योग-धंधों को बड़ा प्रोत्साहन मिलेगा और उनके भी दिन सुख से बीतेंगे।

प्राचीन युग में सूत कातने का महत्व पूर्ण-कार्य स्त्रियों द्वारा ही किया जाता था। उस ज़माने में भारत की खपत भर के लिये भारत में ही कपड़े तैय्यार हो जाते थे वरन यहाँ के उत्तमोत्तम वस्त्र बाहर भी रवाना किये जाते थे किन्तु आज सूत कातने की

प्रणाली में कमी होने के कारण हमें अपने बच्चों के लिये दूसरों का मुँह ताकना पड़ता है। अब भी ग्रामीण नारियों में कार्य शीलता और पटुता की वही क्षमता है काश उन्हें थोड़ा सा भी प्रोत्साहन मिल जाय।

हमें पूर्णाशा एवं विश्वास है कि वर्तमान सरकार देहात के नारी-जीवन की बहबूदी के लिये कोई न कोई नई योजना निकाल कर यश की भागी होगी।

सरकारी कर्मचारी

उनके व्यवहार और कर्तव्य

सरकारी कर्मचारी उनके व्यवहार और कर्तव्य
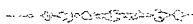
पिछले परिच्छेदों में यदा कदा सरकारी कर्मचारियों के व्यवहारों का ज़िक्र किया गया है; किन्तु उनके व्यवहारों को देखते हुये यह आवश्यक है कि उनकी स्थिति पर भी एक परिच्छेद लिखा जाय। साथ ही हमें यह भी बताना है कि वास्तव में उनके कर्त्तव्य क्या हैं और वे उन कर्त्तव्यों को किस प्रकार और कहाँ तक वैधा तरीक़ों से अमल में ला रहे हैं।

दुनिया के राष्ट्रों की बहबूदी और ज़वाल का मुख्य उत्तरदायित्व सरकारी कर्मचारियों पर ही निर्भर है। हम इंगलैण्ड आदि देशों में देखते हैं कि वहाँ की पुलिस कितनी शिष्ट और कर्तव्यशील है। उनका ध्येय जनता के कष्टों का निवारण करना है। जन-सेवा का भाव ही उन्हें इतना ऊँचा उठा सका है कि दुनियाँ आज उन्हें आदर्श की दृष्टि से देखती है।

भारत का प्राचीन इतिहास भी यहाँ के सरकारी कर्मचारियों का साक्षी है। जब तक इन कर्मचारियों में इन्सानियत और नेकनीयती रही तब तक राज्य सुरक्षित रहे किन्तु ज्योंही उनमें बई-

सत्ता का नशा आया त्योंही बड़े-बड़े शक्तिशाली हिंदू एवं मुसलिम राज्य नेस्त नाबूद हो गये, केवल उनकी धुंधली स्मृतियाँ छाया के रूप में आज इतिहासों के पृष्ठों पर दिखाई देती हैं।

सन सत्तावन का सिपाही विद्रोह-बंगाल की तानाशाही, फांसियाँ वाले बाग के अँग्रेज नक्कारे और आये दिन तमाम बलवाओं और विद्रोहों की तमाम जिम्मेदारियाँ सरकारी कर्मचारियों पर ही दिखाई देती हैं। जनता यदि इन कर्मचारियों के व्यवहारों से संतुष्ट हो तो इतना मौका ही न आये कि उसे विद्रोह का झंडा खड़ा करना पड़े।

भारतीय पुलिस का रवैय्या अब तक बहुत ही चिन्ता-जनक रहा है और अब भी है किन्तु काँग्रेस के प्रयत्न और आन्दोलनों के कारण इधर कुछ दिनों से उसका रुख कुछ पलट सा गया है और उसमें अब वह तानाशाही नहीं रह गई। पुलिस ने जिन नाजायज अधिकारों से काम लेकर अब तक ग्रामीणों को परेशान किया है उन्हें स्मरण कर के आज भी ग्रामीण सिहर उठते हैं।

भारतीय पुलिस और विदेशी पुलिस में महान अन्तर सा दीखता है। विदेशी पुलिस अपने को जन-सेवक समझती है वहाँ भारतीय पुलिस शायद जनता को अपना सेवक समझे हुये है। इस प्रकार आये दिन देश के भिन्न भिन्न प्रान्तों से पुलिस के खिलाफ़ रिपोर्टें देखने में आया करती हैं। झूठे मामलों को सच बना देना और सच्चे मामलों को झूठा साबित कर देना भारतीय पुलिस के बायें हाथ का खेल है।

भारतीय पुलिस के मत्थे रिश्वत खोरी का भी निन्दनीय कलंक है। ऐसे-ऐसे उदाहरण हैं जहाँ पुलिस ने रिश्वत के नाम पर लोगों के पहिनने के कपड़े और खाने के बर्तन तक बिकवा लिए हैं। इन सब जुल्मों का अधिकतर उत्तरदायित्व उन पुलिस अफ़सरों पर है जो देहात में थानेदारी या अन्य इसी प्रकार के ओहदों पर तैनात हैं। उनकी देखा देखी उनके मातहत कान्स्टेबिल भी घोर अत्याचार करते हैं और ग्रामीणों को घोर कष्ट होता है। बेचारे ग्रामीणों के पास न तो इतना धन ही है और न ज्ञान ही कि वे अपनी इस प्रकार की शिकायतें उच्चपदाधिकारियों तक पहुँचा सकें लिहाज़ा फल यह होता है कि वे पुलिस के खूनी शिकंजों के शिकार होते हैं।

थानेदार के अलावा तहसीलदार भी कुछ कम नहीं होते। वे भी अपने अधिकारों का दुरुपयोग करना ही अपनी शान समझते हैं। गालियाँ बकना नाजायज धमकियाँ देना और तरह-तरह से जनता को परेशान करना, उनका मुख्य ध्येय सा रहता है। उनके मातहत या उनके साथ काम करने वाले अन्य पदाधिकारी भी उन्हीं के क़दमों पर क़दम रखना अपना कर्तव्य समझते हैं। इस प्रकार की धाँधली और अन्धेर ने अंग्रेज़ी सल्तनत में काफ़ी तहलका मचाया और बेचारे भोले ग्रामीण इन पदाधिकारियों की कोप-ज्वाला में अपना सब कुछ खो बैठे। शहरों में इन पदाधिकारियों की चालबाजियाँ कम चलती हैं वहाँ के पठित समाज में इनका सिक्का नहीं जम पाता फिर जो खुद ही मर रहा है उसको

गर मारा तो क्या मारा ? ग्रामीणों पर अपना कोप शांत करके इन लोगों ने कौन क़िला फतह कर लिया।

इन पदाधिकारियों के अलावा पटवारी भी ग्रामीणों के साथ बड़ा अत्याचार करते हैं। ग्रामीण पटवारियों को ही ब्रिटिश सरकार का प्रतिनिधि समझते हैं क्योंकि जमीन सम्बन्धी तमाम लिखा पढ़ी पटवारी की ही जिम्मेदारी पर रहती है। थोड़ी सी तनख्वाह पाने वाले ये पटवारी थोड़े ही दिनों में धनाढ्य बन बैठते हैं। मोटी अक्ल से सोचने की बात है कि यदि ये लोग रिश्वत न लें तो कहाँ इतनी दौलत हासिल करें।

हर प्रकार से ग्रामीण पटवारियों की खुशामद करते हैं फिर भीं समय पर पटवारी उनके साथ दाँव खेल ही जाते हैं और उन्हे हर प्रकार से जलील करते हैं।

कांग्रेस मिनिस्ट्री होने के बाद से अब ये जुल्म कम हो रहे हैं क्योंकि अब सरकार इस ओर ज्यादा छिद्रान्वेषी हो रही है और आशा की जाती है कि थोड़े ही समय में जनता को इन पदाधिकारियों के खिलाफ़ आवाज़ उठाने का मौक़ा न मिलेगा।

अब हमें इन सरकारी कर्मचारियों के कर्तव्यों पर एक दृष्टि डालनी है विदेशों में पुलिस अपने कर्तव्यों का पालन ठीक ठीक कर रही है। आप यदि राह भूले हुये हैं और किसी पुलिस कर्मचारी से पूछने जाइये तो वह निहायत शिष्टता पूर्वक आपसे वर्ताव करेगा और आपकी अपनी जानकारी के अनुसार सहायता करेगा। पुलिस का काम जनता के जान-माल की रक्षा करना है और उसे हर

प्रकार के कष्टों से बचाना है। भारतीय पुलिस यदि इस मार्ग का अवलंबन करे तो ग्रामीणों को बड़ी सुविधा हो जाय और कार्य-व्यवस्था भी सुविधानुसार चलने लगे।

इसी प्रकार तहसीलदार वगैरह भी यदि अपना रुख पलट कर एक न्यायी के रूप में काम करना आरम्भ कर दें तो देहातों का एक संकट टल जाय।

पटवारी को न्याय पूर्वक रिपोर्ट देनी चाहिए। पाले या इसी प्रकार की अन्य आकस्मिक बातों से यदि फ़सल को नुकसान पहुँचता है तो उसका फ़र्ज़ है कि उचित रूप से ठीक-ठीक अपने अधिकारियों को रिपोर्ट दे और छूट कराने की व्यवस्था करे। जहाँ तक हो सके उसे गरीब किसानों की सहायता करनी चाहिये। समय-समय पर किसानों को उनके हित की बातें भी समझाना चाहिये।

आबपाशी विभाग के पतरौलों का भी फ़र्ज़ है कि वे सिंचाई के लिये आवश्यकतानुसार पानी की व्यवस्था करें जिससे फ़सल में कोई हानि न पहुँचे। उनका फ़र्ज़ है कि उचित रूप से गश्त करके सच्ची रिपोर्ट दें ताकि ग्रामीणों के मत्थे सींच का नाजायज़ बोझ न पड़े।

हमें पूर्णाशा है कि सरकारी कर्मचारी अपने फ़राइज़ का

ख्याल रखते हुये अपनी ड्यूटी अदा करेंगे। ग्रामीणों का भी फ़र्ज़ है कि वे समय-समय पर आवश्यकतानुसार इन कर्मचारियों की जाँच पड़ताल के समय सच्ची रिपोर्टें देकर सहायता करें ताकि उनके काम में किसी प्रकार की बाधा या रुकावट न पड़े।

मनाई जाती हैं। देहात वही हैं, ग्रामीण भी आज ग्रामीण ही कह कर पुकारे जाते हैं और सम्पत्तिशालियों का भी वही अस्तित्व है किन्तु विलासिता और ऐश्वर्य की भूख ने उन प्राचीन रिश्तों और व्यवहारों में आज ज़मीन और आसमान का सा अन्तर उपस्थित कर दिया है।

ज्यों ज्यों आधुनिक सभ्यता का प्रचार होता गया, त्यों-त्यों सभ्यता की ओट में विलासिता की भी चिनगारी बढ़ती गई और विलासिता के साथ-साथ लूट-खसोट का भी बाज़ार गर्म हुआ। इस लूट-खसोट का नतीजा बड़ा ही करुणाजनक हुआ। एक ओर ग्रामीणों के स्वत्वों का अपहरण होने लगा और दूसरी ओर इन्हीं किसानों की लूटी-खसोटी सम्पत्ति पर सम्पत्तिशाली समुदाय विलासी-प्रासादों में मांस और मदिरा की बाहुल्यता हुई और चरित्र-भ्रष्ट छोरियों के मद-होश तराने सुनाई पड़ने लगे। उफ़ कितना जघन्य कार्य ? एक ओर एक निरीह प्राणी का रक्त बहाया जाय और दूसरी ओर उसी रक्त से होली खेली जाय, यही ईश्वर का न्याय है ! और यही है उसकी सख़ावत ?

सम्पति शाली होना या सम्पति एकत्रित करना उस हद तक गुनाह में नहीं दाखिल जब तक उसका सदुपयोग किया जाय। दुरुपयोग करने से उसमें महान दोष आ उपस्थित होते हैं। और यही दोष पूंजी पतियों के मत्थे नारकीय पातकों की भाँति चिपक जाते हैं।

दूसरे देशों में भी सम्पतिशाली हैं और किसी क़दर हमारे

देश से ज्यादा ही हैं किन्तु इस प्रकार की ले – ले तू - तू वहाँ नहीं मचती। उनकी सम्पति जमीन में गाड़ कर रखने या फिर पानी की तरह बहाने की चीज नहीं है। उस सम्पति से बड़े बड़े कल - कारखाने खुले हैं जिनमें हजारों गरीबों की रोटी और कपड़े की समस्या हल की जाती है। हो सकता है और है भी ऐसा कि दूसरे देशों में भी बेकारी और भूख का मसला जोर पकड़ रहा है किन्तु भारत की दीन दशा से सब देश अच्छे ही हैं।

देश में गरीबों की गरीबी के साथ ही साथ अब सम्पत्ति-शालियों की भी दशा बिगड़ रही है। 'जैसी नियत वैसी बरकत' के अनुसार आज बदनियत जमींदारों के भी दिवाले निकल रहे हैं इसका प्रत्यक्ष प्रमाण इन्सालवेंसी की दरख्वास्तों से लगता है। कोने कोने से आज जमींदार और संपत्ति शाली दिवाले का ढिंढोरा पीट रहे हैं। जिन मकानों में कभी घी के चिराग जलते थे आज उन्हीं प्रासादों में अखण्ड नीरवता का ताण्डव होता है और रजनी के प्रगाढ़ अन्धकार में उलूक-वृन्द उनमें विहार करते हैं। आशंका है कि या भारत के सम्पत्ति शाली चेते नहीं तो शीघ्र ही यह पूंजीवाद का दुर्ग ढह जायगा। दीन-हीन कृषकों की भांति वह भी दिन आयेगा जब यही कथित पूँजीपति गली कूचों में रोटी और कपड़े के लिये ठोकरें खाते फिरेंगे। हमारे पास सैकड़ों जमींदारों के ऐसे उदाहरण हैं जो आज अपना सब कुछ खोकर आधे पेट रहकर अपनी इज्जत आबरू कायम किये हुये हैं। सैकड़ों ऐसे धनिक परिवार हैं जिनकी लाखों की जायदादें हजारों में बन्धक

रखी हैं और वे अपना पेट दबाये अपने कुत्सित कार्यों पर पश्चा-त्ताप कर रहे हैं। यह कोरी बातें ही नहीं हैं बल्कि इनमें तथ्य है, यदि विश्वास न हो तो आज सम्पत्तिशालियों के दिलों में पैठिये, और देखिये उनपर क्या बीत रही है। क्या इस महान् परिवर्तन को देख कर भी सम्पत्तिशाली खामोश ही रहेंगे। इन नाजुक परिस्थितियों में भी यदि जमींदारों और सम्पत्तिशालियों ने अपना रवैय्या न बदला तो बहुत मुमकिन है कि उनकी हस्तियों के भी लाले पड़ जायें।

उठते हुये तूफान की प्रलयंकार लहरों में जिस प्रकार एक लकड़ी के छोटे से तख्ते का निस्तार नहीं हो सकता, इसी प्रकार देश के जन-मत के धधकते हुये आन्दोलन से सम्पत्तिशालियों का भी निस्तार होना असम्भव ही नहीं; कठिन है। यह माना जा सकता है कि आन्दोलन की नीव पर सम्पत्ति शालियों और जमीदारों ने भी एक नवीन आन्दोलन कायम किया है किन्तु नक्कार- खाने के गगन भेदी गर्जन के सम्मुख एक तूती की आवाज कहाँ तक कायम रह सकती है। किसानों या मजदूरों की रैंक (पंक्ति) में खड़े होकर नहीं बल्कि निष्पक्ष भाव से मेरी यह राय है कि जबतक जमीदार किसानो से कंधे भिड़ा कर आगे न बढ़ेंगे तब तक उनकी गति- विधि उन्नत का पथ न देख सकेगी।

किसानों और मजदूरों का क्या ? उनके पास तो जो कुछ था सब लुट गया। अब उनसे क्या उम्मीद की जा सकती है ? उधर साम्राज्य लोलुपता का खूनी पंजा लूट खसोट का आदी हो चुका

है और इसे लूटने-खसोटने के लिये कुछ न कुछ चाहिये ही ऐसी अवस्था में क्या ज़मींदार अपने को सुरक्षित समझते हैं ? क्या उनका यह ख्याल है कि उनकी इन उत्तुंग अट्टालिकाओं की नींव अब भी कायम रह सकेगी ? ठंढे दिल से सोचने की बात है कि किसानों और मजदूरों की लूट के बाद अब ज़मीदारों की लूट की बारी है। जिस प्रकार किसानों और मज़दूरों को ज़मींदारों और सम्पत्तिशालियों ने लूटा है उसी तरह यकीन नहीं कि किसी अन्य शक्तिशाली ताकत द्वारा ज़मींदार व सम्पत्तिशाली भी न लुटें।

इस समय अपने अधिकारों का प्रश्न नहीं है बल्कि प्रश्न है अपनी हस्तियों का। पूंजीपति अपने तानाशाही अधिकारों के लिये आन्दोलन उठारहे हैं किन्तु इस आन्दोलन को उठाने के पूर्व क्या कभी उन्होंने अपनी हस्ती पर भी विचार किया है ? क्या कभी उन्होंने अपने समुदाय पर आने वाली महानाश की तूफानी आंधी पर भी विचार किया है ? माना यदि उनका आन्दोलन सफल भी हुआ तो क्या यह सम्पत्तिशाली वर्ग उनकी अस्थियाँ लगान या कर्ज़ के रूप में नोच कर अपनी भूख मिटायेगा ?

भारत के सामने इस समय असहाय किसानों और मज़दूरों की सुविधाओं का प्रश्न है। इन किसानों का बोझ हल्का कर देने का यह अर्थ है कि वे सब कामों से अवकाश पाकर ज़मीन को उर्वरा बनाने में संलग्न हों और अच्छी फ़सलें तैय्यार करें। ज़मीदार और सम्पत्तिशाली फिर का सोचे कि वैसी परिस्थिति में वे किसानों से ज्यादा पैसा पा सकते या आज हैं की डॉंवा डोल

परिस्थिति में।

अब तक जो कुछ भी पूंजीपतियों ने किया अपने विचार से ठीक किया क्योंकि उन्हें अब तक इन निरीह प्राणियों से पैसे की प्राप्ति होती रही किन्तु आज निराश्रित किसानों से कुछ न पाकर भी यह पूंजीपतियों का फिरका क्यों अपनी अकड़ बाजी में बैठा हुआ है। क्या इन सकुचित दिमागों में अभी तक अपने भविष्य के निर्माण का प्रश्न नहीं आया ? यदि नहीं तो फिर इनकी दशा पर महज तरस खाने के और क्या किया जा सकता है।

व्यापार मंदे पड़ रहे हैं, फसलों का बुरा हाल है एन केन प्रकारेण मानव-जीवन की आवश्यकतायें पूरी हो रहीं हैं फिर आगे चल कर क्या होगा। किसान और मजदूर तो मेहनत-मजदूरी करके अतरे-चौथे अपना पेट भर ही लेते हैं किन्तु अवसर आने पर ये सम्पत्तिशाली और जमींदार क्या करेंगे ? इनकी नाजुक कलाइयों में इतनी शक्ति नहीं कि परिश्रम कर सकें इनके सीमिति दिलों में इतना साहस नहीं कि कोई परिश्रम-युक्त व्यापार कर सकें फिर किस प्रकार ये अपनी जीवन-नौका बेकारी के इस तूफानी समुद्र में खे सकेंगे।

बड़े जमीदारों और लक्षाधीशों की बात छोड़िये क्योंकि उनके पास जब तक पैसा है तब तक वे रंगरेलियाँ मचाने और अपने सिद्धान्त पर चलने से टस से मस न होंगे किन्तु सब से खतरनाक जीवन उन जमीदारों का है जो किसी रूप में बड़े काश्तकार ही कहे जा सकते हैं। किसानों के जनमत और सुविधाओं

के साथ ही साथ उनकी भी सुविधायें हैं। फिर समझ में नहीं आता कि वे आज इस किसान आन्दोलन को क्यों वक्र दृष्टि से देख रहे हैं।

विश्व में महानाश के बादल घहरा रहे हैं सारे राष्ट्र अपनी अपनी तोपें सीधी कर रहे हैं। दुर्गों की नींवें और भीतों में लोहे की सुदृढ़ कीलें ठोंकी जा रही हैं और खून में ज्वाला पैदा करने वाले बिगुल फूंके जा रहे हैं। गुप्त रीति से दुनिया के धन के आंकड़े बन रहे हैं और पूंजी पतियों की चल और अचल संपत्ति का विहंगावलोकन किया जा रहा है किन्तु फिर भी पूंजीपति अपनी विलासी निद्रा में सो रहे हैं।

पूंजी पति ग़रीबों से द्वेष रख कर अपने भविष्य के लिये कांटे बो रहे हैं। क्या वे उम्मीद रखते हैं कि अवसर आने पर ये किसान और मज़दूर उनकी सहायता करेंगे? क्या उन्हें विश्वास है कि आज जिन पर छुरियाँ चल रही हैं वही कल अपने पर छुरी फेरने वाले जल्लाद की इमदाद में अपने बल का प्रयोग करेंगे? इसका फल बिल्कुल स्पष्ट और प्रत्यक्ष है।

इन तमाम बातों को देखते हुये हमें विश्वास है कि संपत्ति-शाली वर्ग और ज़मींदारों का फ़िरका अपने लक्ष्य-हीन भविष्य पर पूर्ण रूपसे विचार करेगा और फिर आगे क़दम बढ़ायेगा। मेरी अपनी रायमें जन-मत के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाना पूंजीपतियों के लिये अत्यन्त अहितकर सिद्ध होगा।

ज़माने की रफ़्तार आज जिस ओर है वही मार्ग ग्रहण करना हितकर है। मेरे इस लेख के लिखने का आशय यह नहीं है कि सम्पत्तिशाली अपनी सम्पत्ति व्यर्थ में लुटा कर स्वयं निर्धन हो जाँय बल्कि मेरा मत है कि वे अपनी सम्पत्ति को इस प्रकार कार्य में लावें जिनसे उनके लाभ के साथ साथ देश के बेकार व्यक्तियों का भी लाभ हो। बेकारी आज व्यक्तिगत चीज़ नहीं रही यह तो अब सामूहिक चीज़ हो गई है। इस लिये जब तक सम्पत्ति-शाली वर्ग भी सामूहिक रूप से प्रयत्नशील न होगा तब तक इस कार्य में सफलता मिलना कठिन है।

साक्षर बनाने का आयोजन

आज अनेक शताब्दियों से देश में निरक्षरता की वृद्धि थी ऐसी दशा में एक अशिक्षित मुल्क की राजनीतिक अवस्था जैसी होनी चाहिये भारत की ठीक वही हुई। संसार का इतिहास इस बात का साक्षी है कि जो देश जितना ही निरक्षर है वह देश उतना ही भीरु कायर और धार्मिक वृत्तियों में आडम्बर का अनुगामी होता है। यह सत्य न केवल भारतवर्ष केलिये घटित हुआ है बरन् न जाने कितने देशों पर इस सत्य का प्रभाव मिल चुका है। जिन्हें इतिहास का ज्ञान है, जो संसार के उन्नत और अवनत देशों को देखता और समझता है,वह जानता है कि उन देशों की निरक्षरता और साक्षरता ही उनकी उन्नति और अवनति का कारण होती हैं।

हमारी परतंत्रता और पतित अवस्था के मूल में निरक्षरता की छाप है। अगर निरक्षरता ने हमको राजनीतिक परतंत्र नहीं बनाया तो यह तो सत्य ही है कि राजनीतिक परतंत्रता के युग में हमारी निरक्षरता की वृद्धि हुई। यदि हम अपने प्राचीन काल

की ओर देखें तो हमें यह स्पष्ट दिखाई देगा कि न केवल साक्षरता का हमारे राजनीतिक और सामाजिक जीवन में प्रकाश था, वरन् हमारे देश की शिक्षा और सभ्यता का मस्तक संसार के उन्नत देशों के सामने भी ऊँचा था। यह बात न केवल हमारे कहने की है, बल्कि संसार के जो देश आज शिक्षा और सभ्यता में ऊँचे हैं, उनके विद्वान और महापुरुष इस सत्य को स्वीकार करते हैं।

आज हमारा वह जीवन नहीं है। हमारी उस शिक्षा और सभ्यता को गुजरे हुए दिन, वर्ष नहीं, शताब्दियाँ भी नहीं, युगों का समय बीत रहा है। हमारी पूर्व अवस्था, हमारे लिये ही स्वप्न सी जान पड़ती है। समय आया है, जिसमें हम ऊँची शिक्षा को नहीं, साक्षरता के लिए—पढ़ने-लिखने के साधारण ज्ञान के लिए रोते हैं, तरसते हैं।

आज हमारे जागरण के दिन हैं। अपनी पतित अवस्थाओं के पहचानने के दिन हैं और दिन हैं इन अवस्थाओं से घिरे हुए अंधकार को तिरोहित करने के लिए। हम नहीं कहना चाहते कि हमारी निरक्षरता ने हमको किस प्रकार और कायर बना डाला है। हमारे पूर्वजों को धर्म और सभ्यता का ऊँचा ज्ञान था। उस धर्म का आज हममें एक आडम्बर मात्र बाकी है। आज जिस धर्म का हम ढिंढोरा पीटते हैं, उस ढिंढोरे में—धर्म के सूक्ष्म तन्तुओं ओं में आडम्बर का एक घृणित रूप ही शेष रह गया है। हमारा यह रूप संसार की आखों से छिपा नहीं रह सका। विश्व ने

हमको निन्दा पूर्ण नेत्रों से देखा है और अब तो हम स्वयं अपने आप को उसी रूप में देखने लगे हैं।

परन्तु अपनी उस अवस्था को हम यहाँ पर दोहराना नहीं चाहते हैं कि आज हमारा जागरण-काल है—चतुर्दिक घिरे हुए अंधकार के तिरोहित होने का पवित्र समय है। प्रकाश की रश्मियाँ फूट निकली हैं। जिसकी उज्वलता में देश के विद्वानों और महापुरुषों का ध्यान निरक्षरता की ओर तीव्रता के साथ आकर्षित हुआ है। उन्होंने यह समझ लिया है कि देश से सबसे पहले निरक्षरता के मिटाने की आवश्यकता है। इसीलिए उसके प्रयत्न सम्पूर्ण देश में वायु के समान फैले हुए दिखाई देते हैं।

निरक्षरता का अन्धकार प्रत्येक दृष्टि से हमारे देश के विद्वानों को खटक रहा है। चाहे वे धार्मिक मनोवृत्ति के दृष्टिकोण से देखें, चाहे वे सामाजिक सुधारों को सामने रख कर देखें अथवा वे राजनीतिक महत्वा कांक्षा की भावनाओं को सामने रख कर इस अन्धकार का निरीक्षण करें। हर तरीक़े से यह बात निश्चित हो चुकी है कि निरक्षरता ही हमारे राष्ट्र को पीछे ले जाने वाली एक बाधा है और साक्षरता ही हमारी जागृति को, तेजी के साथ आगे बढ़ा सकती है।

यों तो सम्पूर्ण देश में आज अर्से से शिक्षा-प्रचार की चेष्टायें हो रही हैं। लड़को और लड़कियों के लिये आरम्भिक स्कूलों से लेकर हाई स्कूल और कालेज अधिक संख्या में खुलते जा रहे हैं। इन स्कूलों और कालेजों की संख्या जितनी बढ़

आती है, उनमें पढ़ने वाले विद्यार्थियों की संख्या उनसे भी अधिक दिखाई देती है। यदि ये कहा जाय कि शहरों में शिक्षालयों और विद्यालयों की संख्या कम नहीं है तो एक अनजान व्यक्ति के लिये अतिशयोक्ति न होगी इस लिये कि वह प्रति वर्ष यह देखता है कि वर्ष के आरम्भ में उनमें प्रविष्ट करने वालों की इतनी अधिक संख्या हो जाती है कि विद्यार्थियों को अच्छे स्कूलों और कालेजों में बैठने का स्थान नहीं मिलता। उनके अभिभावक एक बड़ी परेशानी का मुक़ाबला करते हैं परन्तु जिनको शिक्षा का महत्व मालूम है जो संसार के दूसरे देशों में बढ़ती हुई शिक्षा को देखते हैं वे जानते हैं कि शिक्षा के सम्बन्ध में जो व्यवस्था आज हमारे देश में मौजूद है वह पर्याप्त नहीं है। स्कूलों और कालेजों की संख्या इससे कहीं अधिक परिमाण में बढ़ानी पड़ेगी।

जिस रूप में शिक्षा की आयोजना हमारे देश में चल रही है, यद्यपि उसके द्वारा शिक्षा का प्रचार हो रहा है और ऊंची शिक्षा हमारे समाज में प्रविष्ट हो रही है, फिर भी – इतने बड़े देश को निरक्षर से साक्षर बनाने के लिये वर्तमान व्यवस्था अधिक लाभदायक प्रमाणित हो स गी। इसके सम्बन्ध में लोगों को अधिक विश्वास नहीं है। अतएव भांति-भांति के तर्क वितर्क समाज के शुभचिंतकों के मस्तिष्कों मे पैदा हो रहे थे।

देश राजनीतिक आज़ादी की ओर आगे बढ़ रहा है। मुल्क में काँग्रेस मिनिस्ट्री को क़ायम हुये पहला वर्ष समाप्त हो रहा है। इस बीच में काँग्रेस के मिनिस्टरों ने अन्य अनेक प्रयत्नों के साथ-

साथ निरक्षरता के मिटाने और देश को साक्षर बनाने की ओर भी काफ़ी ध्यान दिया है। शिक्षा प्रचार के लिये अधिक-से अधिक रुपये खर्च किये जाने का आयोजन वर्तमान कौंसिलों ने स्वीकार किया ही है।

देश को साक्षर बनाने का उन्होंने एक विशेष प्रयत्न किया है। बर्तमान मिनिस्ट्रों का विचार है कि देश ऊँची शिक्षा में आगे बढ़े, उसके साथ-साथ—नहीं बल्कि उसके पहले यह आवश्यक है कि देश से निरक्षरता मिटे और साक्षरता का प्रवेश हो। प्रत्येक व्यक्ति कुछ न कुछ लिखना पढ़ना जाने। ऐसा होने पर ही हम अपने अधिकारों को समझ सकेंगे और स्वराज्य की लड़ाई में सफल हो सकेंगे।

इस आवश्यकता को अनुभव करके देश के सामने एक विशिष्ट आयोजना रखी गई है। वर्तमान शिक्षा-संस्थाओं के सिवा भी जन साधारण में शिक्षा का प्रचार किया जाय। शिक्षा-संस्थाओं के वैतनिक व्यक्ति—स्त्री-पुरुष अशिक्षितों को साक्षर बनाने का प्रयत्न करें और उनको इस प्रयत्न के लिए ऐसे पुरस्कार भी दिये जायँगे जिनको कौन्सिलों ने निश्चित किया है।

साथ-ही-साथ जिन व्यक्तियों का शिक्षा-संस्थाओं से कोई संपर्क नहीं है, यदि वे भी इस आयोजना में सहायता करेंगे तो वे न केवल पुरस्कार के भागी होंगे, वरन् साक्षरता के पुण्य कार्य में वे एक अक्षय कीर्ति प्राप्त करेंगे, हमारी वर्तमान कौन्सिलों ने इस प्रकार साक्षरता उत्पन्न करने के लिए एक व्यापक आन्दोलन पैदा

स्वीडन के आधुनिक देहात

विश्व के परिवर्तन शील युग और इतिहास में आज स्वीडन भी बदल गया। एक ज़माना था जब यहां के निवासियों का जीवन प्रति-क्षण तलवार की नोक पर नाचा करता था। एक युग था जब यहाँ की गगन चुम्बी अट्टालिकाओं में, अकर्मण्यता का अन्त करने वाला बिगुल, सैनिकों में वीर-भावनायें जागरूक रखता था; किन्तु युग बीता और अब स्वीडन एक मूक समाधि सी लिये हुये है। दुनिया में महानाश की आँधी उठ रही है, महा-युद्ध के बादल घहरा रहे हैं, शक्तिशाली से लेकर निर्बल राष्ट्र तक युद्ध-पोतों के निर्माण में संलग्न हैं, विषाक्त गैसों और विषैले शस्त्रास्त्रों के अम्बार लगाये जा रहे हैं किन्तु स्वीडन अब भी ख़ामोश बैठा है। ऐसा क्यों है ? इसके दो ही मुख्य कारण हैं, या तो दुनियाँ के अन्य राष्ट्रों की तुलना में स्वीडन अपनी शक्ति क्षीण पाता हो या उसे अपना वाणिज्य-व्यवसाय बाहरी लूट-खसोट से सुरक्षित जान पड़ता हो जिससे वह दुनिया के सामने अपनी

आवाज़ न उठाना चाहता हो। ख़ैर जो भी हो किन्तु स्वीडन के प्राकृतिक-दृश्य ही ईश्वर की देन हैं जो इस देश को महत्व दे रहे हैं। लगभग आधा देश पहाड़ी है और जगह जगह नदियाँ व झीलें दिखाई देती हैं। जहाँ-तहाँ शहरों में भी नहरें बनाई गई हैं जो शहरों को और भी सुन्दर बना देती हैं।

स्वीडन का लगभग दसवाँ भाग खेती पर निर्भर है और इसमें समस्त आबादी का अर्द्ध भाग मैदानों में दिखाई देता है। आधुनिक सभ्यता और विज्ञान का अनुकरण करके अब यहाँ के वर्तमान निवासी कृषि की ओर विशेष ध्यान नहीं दे रहे, किन्तु घोड़े पालना और दूध देनेवाले जानवरों का पालना यहां का मुख्य व्यवसाय हो रहा है। देहातों में चौड़े चौड़े मैदान चरागाहों के रूप में दिखाई देते हैं और उत्तम नस्ल के जानवर उनमें आनन्द पूर्वक चरते हुए दिखाई देते हैं। बड़े बड़े शहरों में डेरी फ़ार्म बने हुए हैं जहाँ देहातों से पर्याप्त दूध आता है और मक्खन वग़ैरह तैय्यार किया जाता है। शहरों और गाँवों का सम्बन्ध छोटी छोटी सड़कों द्वारा कर दिया गया है। सुबह होतेही घोड़े गाड़ियां गांवों का चक्कर लगाना शुरू कर देती हैं। दूध से इस प्रकार का बनाहुआ सामान बाहर को रवाना किया जाता है और बाहर से अंडे वग़ैरह प्रचुर-मात्रा में मँगाये जाते हैं।

जो लोग खेती के काम में लगे हुए हैं वे बड़े परिश्रम के साथ काम करते हैं। क्योंकि पहाड़ी भूमि पर खेती करना पत्थर से तेल निकालना है। किसानों के खेत अलग-अलग बने हुए हैं। कहा

कहीं किसान खेतों के किनारे ही अपना रहन-सहन भी करलेते हैं। ये स्वीडिश कृषक अपने परिवार सहित इन खेतों की देख-भाल करते हैं और कटाई मढ़ाई वगैरह स्वयं ही कर लेते हैं।

स्वीडन के किसान बड़े बुद्धिमान होते हैं साथ ही उनकी शिक्षा भी बड़ी ऊंची होती है। मितव्ययिता भी स्वीडन के किसी किसी भाग में पूर्ण रूपेण दिखाई देती है।

स्वीडन के धुर उत्तर में सरदी काफी पड़ती है, और सूरज का तापमान इतना कम रहता है कि जानवरों के खिलाने केलिये घास तक नहीं सूख पाती। इस घास को सुखाने के लिए किसान को काफी प्रयत्न-शील होना पड़ता है। खेत के चारों ओर कतार बाँध कर बाँस गाड़े जाते हैं और छोटे छोटे हरी घास के गट्ठे इन्हीं बाँसों में लटका दिये जाते हैं और सूखने पर नीचे उतारकर सहूलियत के साथ रख दिये जाते हैं।

स्वीडन देश में जंगलों की भी बाहुल्यता है और जगह जगह बीहड़ वन दिखाई देते हैं। शुरू में कुछ जंगल काट कर खेत भी बनाये गये, किन्तु वहां के निवासियों ने सोचा कि लकड़ी का कारबार खेती से ज्यादा लाभप्रद सिद्ध होगा, फलतः जङ्गलों की कटाई बन्द करदी गई और अब वे सुरक्षित रखे जाते हैं। केवल उनसे लकड़ी ली जाती है। जंगलों से लकड़ी काट कर नदियों व झीलों द्वारा कारखानों में लाई जाती है जहां मशीनों द्वारा तख्ते तैय्यार किये जाते हैं जो दूसरे देशों को रवाना किये जाते हैं। संसार की तमाम रेलवे कम्पनियां पटरियों के नीचे लगाने के लिये

अधिकतर लड़के नारवे से ही खरीदते हैं।

स्वीडन वालों का दूसरा मुख्य व्यापार दियासलाइयों का है। यहां के जंगलों में दियासलाइयां बनाने के लिये उपयुक्त लकड़ी मिलती है अतएव जगह जगह इसके भी कारखाने हैं। कुछ दिन पहिले यहां के एक निवासी ने एक ऐसी कल तैय्यार की थी कि उसमें केवल लकड़ी व अन्य सामान रख देने मात्र ही से दिया-सलाइयां मय डिब्बियों के तैय्यार हो जाती हैं। इस प्रकार ११ घंटोंमें एक मशीन ४०,००० डिब्बियां तैयार करती है।

स्वीडन का लोहा भी दुनियां में सबसे अच्छा लोहा समझा जाता है। इसके उत्तरी भाग में लोहे की खानें भी हैं जहां से लोहा निकालने का काम किया जाता है और फिर उससे लोहे की उत्त-मोत्तम चीजें तैय्यार करके दुनिया के सभी देशों को रवाना की जाती हैं।

स्वीडन में यदि कोयले की भी खानें होतीं तो आज वाणिज्य व्यवसाय की दृष्टि से स्वीडन सबसे श्रेष्ठ होता; फिर भी यहां के निवासी बड़े बुद्धिमान हैं और झरनों आदि से विद्युत-शक्ति प्राप्त कर रहे हैं। उनके प्रयत्नों को देख कर आशा की जाती है कि वे निकट भविष्य में ही काफ़ी सफलता प्राप्त करके अपना आदर्श स्थापित करेंगे।

स्वीडन की शिक्षा-पद्धति भी सराहनीय है। कोई व्यक्ति ऐसा न मिलेगा जो पढ़ा लिखा न हो और दो तीन भाषाओं का ज्ञाता न हो। स्कूलों, कालेजों और यूनीवर्सिटियों की व्यवस्था

बड़ी उत्तम है। इन संस्थाओं में बच्चों को किसी प्रकार की फीस नहीं देनी पड़ती। अध्यापक-वर्ग काफी शिक्षित होता है और बच्चों में सच्चरित्रता का संचार करता है। यद्यपि उन अध्यापकों की तनख्वाह अधिक नहीं होती किन्तु फिर भी ये बड़े आदर व सन्मान से देखे जाते हैं। स्कूल की पढ़ाई समाप्त कर लेने के बाद यूनिवर्सिटी की पढ़ाई आरम्भ होती है, किन्तु इसमें वही छात्र प्रविष्ट हो पाते हैं जो एक कठिन इम्तहान का मुक़ाबला करते हैं। सब प्रकार योग्य हो जाने पर यदि छात्र किसी सरकारी नौकरी की इच्छा प्रकट करता है तो उसे चर्च में सबके सामने परीक्षा देनी पड़ती है यदि वहां वह उत्तीर्ण हो गया तो उसे जगह प्रदान की जाती है। जहां आबादी घनी नहीं है वहाँ ४ माह के लिये एक शिक्षक आता है और नियमित रूप से शिक्षा देता है। प्रत्येक स्कूल में पुस्तकालय भी होते हैं जिनमें स्वीडिश भाषा के अतिरिक्त फ्रेंच जर्मन व इंगलिश की भी किताबें रहती हैं। ये पुस्तकें केवल दिखाव के लिये नहीं होतीं बल्कि यहाँ के बच्चे छोटी ही अवस्था से ये भाषायें सीखने लगते हैं। अंग्रेजी तो ये लोग धारा प्रवाह बोल सकते हैं।

स्वास्थ्य की ओर भी ये लोग विशेष ध्यान देते हैं और प्रत्येक स्कूल में जिमनेज़ियम की शिक्षा अनिवार्य रूप से दी जाती है। सफाई का भी विशेष ध्यान दिया जाता है और गर्मियों में नदियों व झीलों में बच्चों को तैरना सिखाया जाता है। सर्दियों के दिनों में जब पानी जम जाता है तो स्कूलों में ही नहाने की व्यवस्था की

जाती है और प्रत्येक स्कूल में एक एक स्नानागार होता है । उस कमरे में छोटे छोटे टब रक्खे रहते हैं जिनमें कूद कूद कर बच्चे नहाया करते हैं। बच्चों को चाहे वे अमीरों के हों चाहे गरीबों के नम्रता का पाठ सम्यक रूपेण पढ़ाया जाता है । रास्ते में चलते हुये ये लड़के अपने से बड़ों के अभिवादन के लिये शिष्टता पूर्वक अपनी टोपियाँ उठा लेते हैं।

स्वीडन के निवासी खुली हवा बहुत पसन्द करते है। गरमियों के दिन वे प्रायः बाहर ही बिताते हैं। उन्हें अपने पारिवारिक व्यक्तियों से बड़ा मोह होता है और वे जब कहीं बाहर जाते हैं तो एक साथ ही जाते हैं। ये लोग काफी पीने के बड़े ही आदी होते हैं। किसान से लेकर बड़े बड़े धनिकों तक में यह आदत पाई जाती है। काफी में शक्कर मिलाकर ये लोग पीना नहीं पसन्द करते बल्कि शक्कर का एक टुकड़ा मुख में रख लेते हैं और धीरे धीरे काफी पीते जाते हैं।

इनके खाद्य पदार्थों में जमा हुआ दूध मुख्य है। गृहणी इस जमे हुये दूध में शक्कर छिड़क कर एक काठ की तश्तरी में रख देगी और परिवार के लोग अपने अपने हाथों में काठ के चम्मच लेकर बैठ जायगे। प्रत्येक व्यक्ति अपनी अपनी इच्छानुसार अपने चम्मच से अपना हिस्सा काट लेगा और फिर आनन्द से खाते रहेंगे। इनके भोजन प्रस्तुत करने की क्रिया भी बड़ी विचित्र है। वर्ष में केवल चार बार ही इनके चूल्हे गरम होते हैं। एक बार का बनाया भोजन ३ माह तक काम देता है। घर में छत से लटका

कर एक बांस टांग दिया जाता है और उसी में इस प्रकार बनी हुई रोटियां टांग दी जाती हैं और आवश्यकतानुसार धीरे धीरे खाई जाती हैं। यह बात नहीं है कि इस प्रकार का खाना केवल किसानों तक ही सीमित हो बल्कि बड़े से बड़े धनिक और राजा तक ऐसा ही करते हैं। त्योहार भी इनके बड़ी धूम धाम से मनाये जाते हैं और ऐसे अवसरों पर रंग बिरंगे कपड़ों की धूम होती है। छोटी छोटी स्वीडिश बालिकायें फूलों के विचित्र आभूषण पहिने तितलियों की भांति उड़ती सी फिरती हैं। यहां के निवासियों का ख्याल है कि दुनियां की तमाम जातियों और राष्ट्रों से ये लोग ज्यादा खुशहाल हैं। अलहदीपन इनके पास फटकने तक नहीं पाता। काम के वक्त ये लोग भूतों का सा परिश्रम करते हैं और विश्राम के समय ये लोग शाहज़ादों की भांति मौज भी उड़ाते हैं।

इन थोड़ी सी उपर्युक्त बातों ही से पता चलता है कि स्वीडन के निवासी कितने खुशहाल हैं। पहाड़ी भूमि के होते हुये भी वे लोग इतना श्रम करते हैं कि व्यापारी जगत में आज उनके देश का नाम भी आदर की दृष्टि से लिया जाता है। यद्यपि बहुत सी बातें ऐसी भी हैं जिनके लिये इन्हें पूर्ण सुविधा नहीं प्राप्त है किन्तु फिर भी वे अपना दम दुनियां के पर्दे पर क़ायम किये हुये हैं।

हमें उनके ऊंचे आदर्शों का अनुकरण करना चाहिये। भारत में क्या कुछ नहीं है? लोहे, कोयले, सोने, चाँदी, तांबे, व हीरे और अन्य बहुमूल्य जवाहरातों की खानें होते हुये, उपजाऊ भूमि की सिंचाई के साधन होते हुये भी हम वाणिज्य व्यवसाय में क्यों

इतने पीछे हैं ? इसका एक ही मुख्य कारण है हमारी अशिक्षा। हम अपने स्वरूप को अपने साधनों और शक्तियों का भली प्रकार अन्दाज़ा नहीं लगा पाते और इसी लिये हम अज्ञानों की भांति अपने देश की बहुमूल्य चीजें दूसरों के हाथों सौंप रहे हैं। यदि हमारी ऐसी सुविधायें कहीं इन स्वीडिशों को प्राप्त होतीं तो शायद वे दुनियां के सबसे धनी व्यक्ति होते।

इस पुस्तक में विदेश के इन देहातों का जिक्र करने से मेरा आशय यही है कि हमारे देश-वासी भी इन उन्नत देशों का अनुकरण करें और एक बार पुनः भारत को वही प्राचीन भारत बनादें, जिसके गुणों का कीर्तन आज विदेशी भी मुक्त-कण्ठ से करते हैं। इन विदेशियों की भांति हमारे देश-वासियों को भी स्वावलंबन का मार्ग ग्रहण करना चाहिये। दूसरों के आश्रित रहकर न किसी देश ने उन्नति की है और न कर सकता है। बेहतर हो यदि हमारे शिक्षित नवयुवक नौकरियों की तलाश में अपनी शक्तियां क्षीण न करके, वाणिज्य-व्यवसाय की ओर लगावें।

के किसान और मजदूर

हंगेरी के किसान और मज़दूर

ए क अजीब कशमकश के उपरांत अस्ट्रिया जर्मनी के साथ जो दिया गया और उसका भाग्य नक्षत्र बुलन्दी से उतर आया सदियों पूर्व की उसकी महती आकाँक्षाये मटिया मेट हो गई। किन्तु पूर्व इसके कि हम इस अध्याय में हंगरी का वर्णन दें यह आवश्यक है कि उसका कुछ परिचय भी पाठकों को दिया जाय ।

किसी जमाने में मेग्यर जाति का एक शक्ति-शाली फिरका कारपेथियन पार करके डैन्यूब की सुविशाल तराई में आबाद हो गया। सन् ८९३ में इन सब की एक महती सभा बैठी जिसमें आर्पेड जाति का प्रधान यहाँ का नेता बनाया गया किन्तु एतिहासिक खोज बताती है कि इसके १०० वर्ष पूर्व सीफेन नामक एक व्यक्ति ने इस हंगरी की नीव डाली थी।

कार्य व्यवस्था सुचारु रूप से चल रही थी किन्तु सहसा महानाश की चिनगारी भड़क उठी और अशांति के प्रलयंकर

बादल चहरा उठे सारे देश में एक नवीन क्रांति की लहर फैल गई हैम्हवर्ग की कान्सप्रेसी हुई कि हंगेरी को होली रोमन इम्पायर का एक अंक बना लिया जाय।

इन तमाम आक्रमणों और आपत्तियों के बावजूद भी वीर हंगेरियन अपनी स्वतंत्र भावना की अलख जगाते रहे। इतिहास उसकी भावना है कि तुर्कों और तातारों के आक्रमणों ने हंगरी की चहल- पहल नष्ट कर दी। तमाम देश एक वीरान रेगिस्तान सा हो गया किन्तु उनसे छुटकारा पाते ही एक नई तबदीली हो गई। उजड़े हुये शहर बस गये।

१८४८ ईसवी में सारे राष्ट्र में एक नवीन जागरण उत्पन्न हुआ। राष्ट्रीय झन्डा बुलन्दी पर हुआ, पूंजी पतियों ने अपने अधिकारों पर ठोकर मारदी, और असहायों की सहायता में सन्नद्ध हुए फलतः गुलामी का अन्त होगया। ठीक इसी समय मैटर्निक के अत्याचारों से दुःखी होकर 'मेग्यर' राष्ट्र ने युद्ध की घोषणा की।

वियना में घमासान लड़ाई हुई जिसमें हंगरी पूर्ण रूपेण विजई हुआ। यह विजय लोगों को खली और रूस से एक विशाल सुसज्जित सेना तलब की गई।

१८४९ से १८६७ तक बड़ी कशमकश रही, आष्ट्रिया के सरकारी कर्मचारी अपनी व्यवस्था में असफल होते रहे। न तो वे कर ही वसूल कर सकते थे, और न किसी प्रकार अपना कोई कर्तव्य पालन कर सकते थे। इस बीच में कई युद्ध हुए जिन

में मेम्बर राष्ट्र विजई होता रहा। अंत में सन् १९१४ में विश्वव्यापी महा युद्ध छिड़ा और इसका अंत १९१० की संधि से हुआ। सारे योरुप का काया ही बदल गया। हंगेरी का २।३ हिस्सा उससे अलग कर दिया गया। सारे आष्ट्रिया हंगेरी का साम्राज्य छः हिस्सों में बाँट कर छिन्न-भिन्न कर दिया गया उसकी आर्थिक दशा सोचनीय होगई दुनियाँ की व्यवसाई बाजार से उसकी हस्ती मिटगई। उसके धन पर दुनियाँ वाले मौज उड़ाने लगे।
और इस प्रकार हङ्गेरी का आर्थिक बलिदान हुआ।

महा युद्ध के दौरान में माइकेल केरौली ने हंगरी में प्रजा-तंत्रात्मक शासन की नींव डाली इस प्रजा तंत्र के कार्य क्रम में एक आकर्षण था। इस कार्यक्रम का जनता ने बड़ा स्वागत किया किन्तु प्रजातंत्र वादी इसके घोर विरोधी थे। जमीन को वे अपनी मिलकियत समझते थे और किसी हालत में भी उसे किसानों को देने के लिए तैय्यार न थे।

१९१९ ईसवी में मार्च से अगस्त तक कम्युनिस्टों की आवाज ऊँची रही। नवीन आयोजना के अनुसार राष्ट्रीय करण किया गया; जिस किसी के पास दो सौ एकड़ भूमि थी, वह छीनकर कृषि सहयोगिता के अधिकार में दे दी गई। कारवाइयाँ हो रही थीं; किन्तु किसान इनसे अनभिज्ञ थे। जब इस कार्य क्रम की घोषणा की गई तो एक अशांति फैल गई। किसानों ने देखा कि उनकी जायदादें छिन रही हैं इसलिये उन्हों ने इसका घोर विरोध किया और इसका अन्त ही करदिया।

हंगरी के किसान स्वभाव के बड़े विचित्र होते हैं वे उन लोगों से जिन्हें वे नहीं जानते घोर शसंकित करते हैं। उन्हें अपनी कार्यकुशलता पर बड़ा भरोसा है उनका ख्याल है कि दुनियां के किसान वर्ग कृपिकला और पशु-पालन में उनका मुकाबला नहीं कर सकते, वे संसार के किसानों में श्रेष्ठ और अधिक धनी हैं।

हंगेरी के किसान भाग्य पर विश्वास नहीं करते, उनका सिद्धान्त है कि भाग्य एक चंचल चीज है अगर आज है तो कल नहीं भी होसकती है। उन्हें अपने काम से मतलब, ज्यादा बातूनी उनकी समाज में तुच्छ दृष्टि से देखा जाता है। यहाँ के किसान तीन श्रेणियों बंटे हुये हैं पहिली श्रेणी में वे व्यक्ति हैं जिनके पास सौ से दो सौ एकड़ तक भूमि है ये किसान प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखे जाते हैं, किन्तु एक ऐसा फिरका भी है जो प्रतिद्वन्दता के कारण इनसे ईर्षा भी रखता है। दूसरी श्रेणी उन व्यक्तियों की है जिनके पास ५से १० एकड़ भूमि है। इन लोगों के पास भूमि के अलावा कुटिया भी होती है। भूमि की न्यूनता के कारण ये किसान पड़ोसी जमींदारों के यहाँ मजदूरी भी कर लेते हैं और इनका जीवन संतोषजनक है।

तीसरी श्रेणी उन निराश्रित प्राणियों की है जो मजदूर कहे जा सकते हैं ये लोग किराये पर काम करते हैं, मजदूरी में इन्हें अनाज दिया जाता है सपरिवार रहने के लिये उन्हें एक घर भी मिलता है प्रत्येक को एक एक एकड़ भूमि जोतने के लिए दी जाती है। इन लोगों को एक गाय एक बछड़ा और दो सुअर के बच्चे

रखने का अधिकार है। पशुओं के चरागाह एवं देख रेख की पूरी जिम्मेदारी जमीदारों के ऊपर रहती है। उन्हें प्रति सप्ताह बीस 'पेंगो' नगद भी दिए जाते हैं। यह साधारण मजदूर की आमदनी है दस्तकारों को इससे कहीं ज्यादा दिया जाता है। इन मजदूरों के पास जब तक पैसा रहता है तब तक मौज करते हैं किन्तु पैसे की कमी पर बड़ी उलझन में पड़ जाते हैं। बेकारी कम करने के लिए सरकारी प्रयत्न हो रहे हैं, और बहुत कुछ कम भी हो गई है नीचे की तालिका से पता चलता है कि हंगेरी बेकारी दूर करने में किस प्रकार संलग्न है।

साल	कृषि-मजदूर	बेकार
१९३५	७१४७५०	१५८५८३
१९३६	७२८५२५	१३३३२३
१९३७	७५१४७६	१२४१०४

हंगेरी में खेत की कटाई के लिए मशीनें नहीं इस्तेमाल की जातीं। कटाई के मुखिया को जमीदार के यहां इकरारनामा लिखना पड़ता है और उपज का दसवां हिस्सा उसे दे दिया जाता है इस प्रकार एक मजदूर यदि अच्छी प्रकार कटाई करे तो उसे वर्ष भर को खाने के लिये पर्याप्त अनाज मिल जाता है। गर्मियों में फसल काटने के सिलसिले में कड़ा परिश्रम होता है, इसके बाद आनन्दोत्सव होते हैं। शरद काल में बड़ी मौज रहती है। किसान जल्दी ही सो जाते हैं और सुबह देर तक उठते हैं महायुद्ध के पश्चात्

हंगेरी ने वाणिज्य व्यवसाय में भी काफी तरक्की की। रेशम व सूत के कपड़े यहाँ बहुतायत से तैयार होते हैं और बिजली के सामान मशीनरी वगैरह भी अब खूब बनने लगी हैं।

हमारे देहातों का भविष्य